स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में दाम्पत्य सम्बन्धों का अध्ययन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी0 फिल0 उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

निर्देशिका
डॉ० निर्मला अग्रवाल
निवर्तमान रीडर, हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

शोधछात्रा
अलका त्रिपाठी
शोध छात्रा, हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

हिन्दी-विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
2002

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।

मंगलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ।।

– श्रीरामचरित मानस, बा का.१

वर्णानामर्थसघाना रसाना छन्दसामपि।

मंगलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ।।

— श्रीरामचरित मानस, बा का १

विषय-सूची

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी मे दाम्पत्य सम्बन्धों का अध्ययन

भूमिका

प्राचीन भारतीय मनीषा मे पुरुष' और 'प्रकृति की सृष्टि के आदि निर्माता के रुप मे परिकल्पना की गयी। स्त्री और पुरुष तत्व का सम्मिलन ही सृष्टि का उन्मेष है। सृष्टि के प्रारम्भ मे परमात्मा ने अपने को दो रुपो मे विभक्त किया, वाम भाग से स्त्री और दक्षिण भाग से पुरुष हो गये–

स्वेच्छामय स्वेच्छया च द्विधा रुपो वभूव ह।

स्त्रीरुपो वामभागाशो दक्षिणाश पुमान स्मृत ।।

धर्मप्राण भारत मे वेद पुराण, स्मृति, इतिहास और सस्कृति मे स्त्री को पुरुष की अर्द्धांगिनी मानकर अर्द्धनारीश्वर' रूप की कल्पना की गयी। भारतीय ही नहीं बल्कि विश्व वाड्मय मे पति–पत्नी के इससे पवित्र, महान और उच्च सम्बन्ध की कल्पना नही हो सकती। सृष्टि–सचालन के लिए 'पति –पत्नी के आपसी रागात्मक सम्बन्ध को 'दाम्पत्य' सम्बन्ध के रूप मे, कालान्तर मे प्रतिष्ठित किया गया। पुरुष और स्त्री का यह दाम्पत्य भाव विवाह और परिवार का मूलाधार रहा है। सामाजिक एव सास्कृतिक परिवर्तन के साथ ही

साथ यह सम्बन्ध भी मानव जीवन मे अपनी विशिष्ट स्थिति और प्रभाव छोडता गया।

वैदिक कालीन ऋचाओ मे दाम्पत्य जीवन काफी सुखद और स्वस्थ रहा है। सामाजिक अनुशासन और नैतिक प्रतिमान ही उस युग के दाम्पत्य सम्बन्धो की आधारशिला रहे है। लेकिन ज्यो–ज्यो सभ्यता और सस्कृति प्राचीन मूल्यो और वैदिक परम्पराओ से दूर होती गयी 'दाम्पत्य' सम्बन्धो मे भी शिथिलता परिलक्षित होने लगी। जहॉ मध्यकाल मे दाम्पत्य सम्बन्धो का मूल आधार भोग–विलास तक सीमित हो गया, वहीं आधुनिक काल मे पाश्चात्य विचारधाराओ एव आधुनिक चिन्तन के प्रभाव स्वरुप परम्परागत मूल्यो का ढॉचा ही दरकने लगा। सचार साधनो और वैज्ञानिक अनुसधानो ने विश्व सस्कृतियो को परस्पर इतना निकट ला खडा किया, कि एक दूसरे की मौलिक मान्यताओ मे अन्तर करना असम्भव सा हो गया। भारतीय समाज और साहित्य भी इससे अप्रभावित नही रहा। विशेषत कथा साहित्य मे दाम्पत्य जीवन को लेकर अनेक कहानियॉ एव उपन्यास लिखे गये। यह अध्ययन 'स्वातत्रयोत्तर हिन्दी कहानी मे दाम्पत्य सम्बन्धो के विविध स्तरो' को रेखाकित करने की दिशा मे एक लघु प्रयास है। इसमे 'दाम्पत्य' जीवन की आधुनिक जटिलताओ, पति–पत्नी सम्बन्धो, उनकी कुठाओ और नैतिक मूल्यो के प्रति पति–पत्नी के बदलते दृष्टिकोण को काफी बारीकी और नजदीक से देखने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध को अध्ययन की सुविधा के लिए छ अध्यायो मे विभाजित किया गया है। **प्रथम अध्याय** मे **'दाम्पत्य के स्वरुप' एव सैद्धान्तिक पक्ष का** सक्षिप्त विवेचन करते हुए 'वैदिक काल से लेकर 'मध्य काल' तक पति–पत्नी के सम्बन्धो मे आए बदलाव को रेखाकित किया गया है।

द्वितीय अध्याय मे **नारी जागरण और स्त्री-मुक्ति आन्दोलनो** के परिणाम स्वरुप स्त्री जगत मे आए विभिन्न परिवर्तनो को दर्शाया गया है। शिक्षा एव आधुनिक जीवन शैली का स्त्री की मानसिकता और रहन सहन पर कितना व्यापक प्रभाव पडा इसे इस अध्याय मे भारतीय तथा पाश्चात्य दोनो भावभूमियो पर दर्शाने का प्रयास किया गया है।

तीसरा अध्याय 'हिन्दी कहानी साहित्य' से सम्बन्धित है। कहानी का अपने प्रारम्भिक काल मे क्या स्वरुप रहा, तथा प्रेमचन्द्र के आगमन के बाद कैसे उसकी मूलदृष्टि जनसामान्योन्मुखी हो गयी इस पर प्रकाश डाला गया है। प्रेमचन्द्र के द्विविधाग्रस्त कथा लेखन को किस तरह परवर्ती कहानीकारो ने पूर्णतया यथार्थोन्मुख कर दिया इस पर भी इस अध्याय मे एक विहगम दृष्टि डाली गयी है।

चतुर्थ अध्याय मे **स्वातत्र्योत्तर कहानी और विभिन्न कहानी आन्दोलनों** का सक्षिप्त परिचय देते हुए दाम्पत्य केन्द्रित कहानियो और कहानीकारो का विवरण दिया गया है। आधुनिक युग मे

दाम्पत्य सम्बन्धो को आधार बनाकर प्रचुर परिमाण मे कहानियॉ लिखी गयी है। इस अध्याय मे सन्दर्भित कहानियो का आलोचनात्मक कथ्य देने का प्रयास हुआ।

पचम अध्याय **"सन्दर्भित कहानियो मे दाम्पत्य सम्बधो की जटिलताओ के विविध आयाम"** के अन्तर्गत दोनो महायुद्धो के बाद विश्वपटल पर होने वाले विविध आन्दोलनो वैज्ञानिक आविष्कारो एव दार्शनिक चिन्तन प्रणालियो के भारतीय परिप्रेक्ष्य मे स्त्री पुरुष सम्बन्धो पर पडने वाले प्रभाव को विभिन्न शीर्षको के अन्तर्गत निर्वाचित किया गया है। इस विवेचन मे बदलते स्त्री पुरुष सम्बन्ध, प्रेम, विवाह और सेक्स के प्रति पति–पत्नी के नवीन दृष्टिकोण को उभारने का प्रयास किया गया है।

षष्ठ अध्याय **"सन्दर्भित कहानियो मे व्यजित मूल्यबोध और सामाजिक दृष्टि"** मे 'मूल्यबोध' को परिभाषित करते हुए, हमारे पुरातन जीवन मूल्यो पर नवीन विचारो एव दार्शनिक चिन्तन प्रणालियो के प्रभावो को उद्‌घाटित किया गया है। सन्दर्भित कहानियो मे नैतिक एव सास्कृतिक मूल्यो के टूटने का क्या प्रभाव पडा, इसे भी इस अध्याय मे विभिन्न कहानियो के परिप्रेक्ष्य मे देखने का प्रयास किया गया है।

'उपसहार' मे प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध के सम्पूर्ण चिन्तन का सार प्रस्तुत किया गया है। साथ ही दाम्पत्य सम्बन्धो पर अध्ययन करते

समय मेरे मन मे जो जिज्ञासाए स्वातत्रयोत्तर कहानी और कहानीकारो के शिल्प और भाषा सरचना को लेकर उठी है उन पर भी एक विहगम दृष्टि डाली गयी है।

मै सर्वप्रथम उन साहित्य साधको एव मनीषियो के प्रति नमन एव धन्यवाद प्रकट करती हूँ, जिनका विपुल साहित्य भण्डार प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का आधार बना इस सामग्री के अभाव मे इस शोध–प्रबन्ध की कल्पना करना व्यर्थ था।

मै हृदय से समर्पित व आभारी हूँ, अपनी शोध निर्देशिका' एव गुरु डा निर्मला अग्रवाल के प्रति, जिनके कठोर अनुशासन एव प्रखर पाण्डित्य की छाया मे यह शोध प्रबन्ध पूर्णता प्राप्त कर सका। उन्हीं के ओजस्वी वक्तव्य ने मुझे इस महत्वपूर्ण विषय पर अनुसधान करने के लिए प्रेरित किया। गोविन्द और गुरू की तुलना मे गुरू को प्राचीन ऋषियो और विद्वानो द्वारा जो महत्व दिया गया है, उसका वास्तविक मर्म मै इनके सामीप्य और सानिध्य मे रहकर ही समझ पायी हूँ।

मैं इलाहाबाद विश्वविद्यालय के निवर्तमान रीडर एव प्रखर आलोचक डा रामकमल राय जी के प्रति हृदय से आभारी हूँ, जिनके अमूल्य सुझावो एव सहयोग ने इस शोध–प्रबन्ध को पूरा करने मे अमूल्य योगदान दिया है।

मेरे प्रेरणास्रोत पूजनीय माताजी श्रीमती विमला त्रिपाठी

(प्रधानाध्यापिका) तथा पूज्य पिताजी श्री वी एन त्रिपाठी (मुख्य प्रबन्ध आई टी आई नैनी इलाहाबाद) के प्रति आभार मात्र प्रकट करने से मै उऋण नहीं हो सकती। मै तो साधनमात्र हूँ, साध्य तो वे ही है। अध्ययन के प्रति उनकी गहरी रुचि ने मुझे इस योग्य बनाया।

अपने अनुज दीपक त्रिपाठी (इन्जीनियर) एव छोटी बहन कु रश्मि त्रिपाठी (एम सी ए) के सहयोग के प्रति शब्दो मे कुछ कहना बेमानी होगा। अपने अध्ययन की व्यवस्तता के बावजूद दोनो ने शोध सामग्री उपलब्ध कराने मे महती भूमिका का निर्वाह किया है। मेरे भतीजे चि सन्तोष कुमार चतुर्वेदी कोटिश आर्शीवाद के पात्र है जिन्होने मुझे हमेशा पुत्रवत् सहयोग दिया है।

मेरे पति रास बिहारी चतुर्वेदी जी का शोध कार्य के प्रति निरन्तर प्रोत्साहन, मेरा मार्ग प्रशस्त करता रहा, जिसके लिए हृदय से मै सदैव ही उनकी आभारी रहूँगी।

अन्त मे मै इस शोध–प्रबन्ध मे सहयोग करने के लिए 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन', 'हिन्दुस्तान एकेडमी' तथा राजकीय पुस्तकालय के समस्त अधिकारियो एव कर्मचारियो के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ, जिनकी सहानुभूति एव सहयोग मुझे बराबर मिलता रहा।

दिनांक .20-12-2002 **अलका त्रिपाठी**

प्रथम अध्याय

कहानी साहित्य का उद्भव एवं विकास
– एक सक्षिप्त परिचय

(क) दाम्पत्य : परिभाषा और स्वरूप

(ख) वैदिक काल मे दाम्पत्य का स्वरूप

(ग) रामायण काल में दाम्पत्य का स्वरूप

(घ) महाभारत काल में दाम्पत्य का स्वरूप

(ङ) मध्यकाल में दाम्पत्य का स्वरूप

प्रथम-अध्याय

कहानी साहित्य का उद्‌भव एव विकास—एक सक्षिप्त परिचय

यद्यपि यह निर्विवाद है कि मानव सृष्टि मे भाषण शक्ति के जन्म के साथ ही कथा साहित्य की भी उत्पत्ति हुई, तथापि कहानी कहने और सुनने की प्रवृत्ति का विकास अपेक्षाकृत वाद मे हुआ। कथा साहित्य बहुत प्राचीन काल से ही समाज के सभ्य अथवा पिछडे हुए सभी मनुष्यो मे कौतूहल जगाकर मनोरजन का साधन बनता आ रहा है। हमारे पशुचारी तथा आखेटक पूर्वजो को प्रकृति के नानाविधि कार्य व्यापारो तथा क्रिया कलापो ने इतना मुग्ध किया कि उनके मन मे जिज्ञासा कौतूहल तथा आश्चर्य जैसे भावो की सृष्टि हुई। इसी आत्मानुभव को व्यक्त करने की भावप्रवणता तथा उत्सुकता कहानी का कारण बनी।

ऐतिहासिकता के विचार से भारत वर्ष कथा साहित्य का उद्‌गम स्थान माना जाता है। यहॉ की कहानियॉ प्राचीन काल से ही मौखिक या लिखित रूप मे पाश्चात्य देशो मे पढी तथा सुनी जाती रही है।[1] प्राचीन सस्कृत साहित्य मे कहानी के दो रूप मिलते है– कथा और आख्यायिका। इनके परस्पर वैशिष्ट्य के विषय मे विद्वानो मे पर्याप्त मतभेद हैं। दोनो को पृथक करने वाली रेखा इतनी धूमिल तथा फीकी है, कि आचार्य दण्डी ने इसकी सर्वथा अवहेलना कर दिया है। दोनो मे मुख्य भेद यह है, कि 'कथा' किसी प्राचीन आख्यानक को कहते हैं, जिसमे प्रतिभा के विलास को

हृदय ग्राही सिद्ध हुए। इन्ही के आधार पर पूर्वोक्त विद्वानो ने रामायण और 'महाभारत जैसे कालजयी आख्यानक काव्यो की सृष्टि की। इन आख्यानक काव्यो की पूर्ववर्ती उपनिषदो की कथाओ की मूल आत्मा जिज्ञासा और प्रश्नोत्तर पर आधारित थी – उदाहरणार्थ बाल्मीकि रामायण मे सरयू नदी की उत्पत्ति की कथा तथा महाभारत' मे विभिन्न पात्रो के सवाद तथा 'गीता' के समस्त प्रवचन देखे जा सकते है–

"कथा इमास्ते कविता महीपसॉ

विताय लोकेषु यश परेयुषाम्।

विज्ञान–वैराग्य विवक्षया विभौ

वचो विभूतीर्न तु पारमाह्यर्म्।।

भाग 0/2/3/14

रामायण और महाभारत का समय जातक कथाओ से बहुत पहले अर्थात् 500 ई पूर्व माना जाता है।[2] परन्तु उनका नर्तमान स्वरूप बुद्ध के काफी बाद का लगता है। बाल्मीकि ने अपनी रामकथा को अपनी सूक्ष्म दृष्टि एव काव्यात्मकता के द्वारा शास्वत और चिरन्तन बनाया जिसके कारण यह लोक जीवन मे व्याप्त हो सका। इसके सृजनात्मक कौशल एव सजीव पात्रो की अवतारणा ने परवर्ती कथा साहित्य के लिए एक नवीन मार्ग प्रशस्त किया।

बौद्ध साहित्य' मे–जातक कथाओ का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। इन कथाओ की पृष्ठभूमि व्यापक तथा मानवीय सवेदनाओ के निकट प्रतीत होती है। इन कथाओ मे राजा, सेठ, साहूकार से लेकर नदी, पहाड, पशु–पक्षी आदि को सजीव पात्रो के रूप मे प्रयुक्त किया गया है।

सस्कृत का परवर्ती कथा–साहित्य

सस्कृत के परवर्ती कथा–साहित्य मे वृहत्कथा' का स्थान सबसे महत्वपूर्ण और सर्वमान्य है। 'गुणाढ्य नामक पडित द्वारा यह कथा ग्रन्थ सातवाहनो के शासन काल मे पैशाची भाषा मे लिखा गया। यह अपने मूल रूप मे अप्राप्त है, लेकिन इसके उदाहरण 'बाण कृत हर्षचरित, दण्डी' के काव्यादर्श, क्षेमेन्द्रकृत वृहत्कथा मजरी' तथा 'सोमदेव विरचित 'कथा–सरित्सागर मे मिलते है। 'वृहत्कथा' के उपरान्त लिखे गये कथा–साहित्य मे 'वृहत्कथा श्लोक सग्रह, 'कथा–सरित्सागर, 'वैताल पचविशतिका' 'शुकसप्तति, 'सिहासन द्वात्रिशत' 'पचतत्र तथा 'हितोपदेश' महत्वपूर्ण है। इनका सक्षिप्त विहगावलोकन समीचीन होगा।

सोमदेव द्वारा रचित 'कथा सरित्सागर' सस्कृत के उपलब्ध कथा ग्रन्थो मे सबसे प्राचीन है। इसको पढने से स्पष्ट होता है कि यह अपने कलात्मक रूप मे पुराण कथाओ की ही भाति है–अर्थात् एक स्रोता है तथा एक वक्ता कथाकार जो मूल कथा को प्रारम्भ करता है। प्रत्येक कथा स्वतत्र तथा पूर्ण प्रतीत होती है। इसकी यह शैली मूलत पुराणो, जातक तथा जैन कथा शैलियो का मिश्रण है।

'वैताल पचविशतिका' पच्चीस कथाओ का सग्रह है। इन कथाओ का वक्ता शव मे बसा हुआ एक वैताल है जो अपने स्रोता राजा विक्रमादित्य को अपने हठ से तग करता है, और अत मे एक रहस्य का उद्‌घाटन करता है जिससे राजा का कल्याण होता है।

'शुक सप्तति' सत्तर कथाओ का सग्रह है। इसका वक्ता एक तोता है जो अपनी अर्द्धांगिनी मैना से छल तथा प्रपच से पुरुषो को ठगने वाली दुष्ट और कुलटा स्त्रियो की कथाए कहता है। लेकिन इन कथाओ का ध्येय स्त्री वर्ग को नीचा दिखाना नहीं, अपितु उन्हे अधर्म पथ से सही मार्ग पर लाना है।

सिहासन द्वात्रिशतिका विक्रमादित्य के सिहासन मे लगी हुई बत्तीस पुतलियो द्वारा भोज को सुनाई गयी कथाओ का सग्रह है। इन पुतलियो द्वारा सुनाई गयी कथाओ के कारण राजा भोज विक्रमादित्य के सिहासन पर नही बैठ पाते है।

उपर्युक्त चारो कथा सग्रह सस्कृत कथा साहित्य मे अपना विशिष्ट स्थान रखते है। इनका प्रभाव जहॉ एक और भारतीय जनमानस के कथा प्रवृत्ति पर पडा वही दूसरी ओर प्राकृत और 'अपभ्रश कथा साहित्य भी इनके प्रभाव से अछूता नही रह सका।

नीति सम्बन्धी कथा सग्रह

समूचे सस्कृत कथा–साहित्य मे नीति सम्बन्धी कथाओ का महत्वपूर्ण स्थान है। इसमे चर–अचर पशु–पक्षी सबको कथा का पात्र बनाया गया है। इसमे दो महत्वपूर्ण कथा ग्रन्थ पचतत्र तथा 'हितोपदेश' है।

'पचतत्र' की गणना भारत के प्राचीन लोक कथा साहित्य के अन्तर्गत की जाती है। इसकी रचना तेरहवीं या चौदहवी शताब्दी मे प विष्णुशर्मा द्वारा अपने आश्रयदाता राजा के मूर्ख पुत्रो को नीति की शिक्षा देने के लिए हुई थी। इनका सकलन पाच भागो मे होने के कारण उसका नाम पचतत्र पडा। ये कथाए चूँकि एक विशेष उद्देश्य से लिखी गयी थी अत प्राचीन भारतीय नीति शास्त्र के सैद्धान्तिक परिचय की दृष्टि से भी इनका काफी महत्व है।

पचतत्र की ही भाति हितोपदेश की रचना नारायण पडित द्वारा की गयी। दोनो का मूल उद्देश्य राजकुमारो को राजनीति की शिक्षा देना था। [3]

उपरोक्त कथाग्रन्थो के अनुशीलन के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है, कि सस्कृत साहित्य की समस्त कथाओ का स्वरूप मनोरजन, नीति कथन तथा शिक्षा प्रदान करना है। ये समस्त नीति

ग्रन्थ मानव समाज के लिए तथा भावी कथा साहित्य के लिए अविस्मरणीय है।

प्राकृत तथा अपभ्रश मे कथा तत्व

सस्कृत की भाति प्राकृत मे भी मुक्तक एव प्रबध काव्यो की भरमार है लेकिन इनमे आख्यानक काव्य के तत्त्व बहुत कम मिलते है। परन्तु महाराष्ट्री प्राकृत मे "कौतूहल' द्वारा विरचित लीलावती कथा का महत्वपूर्ण स्थान है। इसमे प्रतिष्ठान के राजा सातवाहन तथा सिहलद्वीप के राजा शिलामेघ की पुत्री लीलावती के प्रेम और विवाह का चित्रण गाथाबद्ध रूप मे किया गया है। सम्पूर्ण कथा अलकृत काव्यमय शैली मे प्रस्तुत की गयी है। इस पर स्पष्ट रूप से पचतत्र और हितापदेश की कथा शैली का प्रभाव दृष्टि गोचर होता है।

अपभ्रश मे साहित्य और कला की दृष्टि से जैन अपभ्रश का स्थान महत्वपूर्ण है। आख्यानक काव्य के रूप मे 'धारल" कवि द्वारा लिखी गयी एक मात्र रचना "पउमसिरी चरिउ" (पदमश्री) मिलती है। इसमे 'पद्मश्री' के पूर्व जन्मो की कथाएँ है। इसके अतिरिक्त विशुद्ध खण्ड काव्य के रूप मे "सदेशरासक मुक्तक" के अन्तर्गत 'गाथा सप्तशती' और 'वज्जलग्ग' स्मरणीय है।

चारण साहित्य

चारण कथाओ मे लौकिक भावना की प्रधानता के कारण इसका रूप मुख्यत दन्तकथात्मक हो गया है। फलत दन्त कथाओ और कथात्मक लोक रूचि ने अनेक लोक गाथाओ की सृष्टि की है। ये लोक गाथाए इतिवृत्तपरक, काल्पनिक प्रेम चरित तथा ऐतिहासिक या सामाजिक आधार पर अवतरित हुई जिन पर प्रत्यक्षत प्राकृत, अपभ्रश का प्रभाव दिखाई पडता है। इनमे "ढोला मारू रा दूहा" "हीर राझा", "कुतुब शतक' इत्यादि है।

प्राचीन भारतीय कथा साहित्य के स्वरूप पर दृष्टि डालने से स्पष्ट होता है कि कथाओ का कलेवर वैदिक साहित्य से लोक साहित्य जातक कथाओ रामायण, महाभारत पचतत्र हितोपदेश वृहत्कथा कथासरित्सागर तथा दशकुमार चरित के समय तक विभिन्न रूपो को धारण करता हुआ मध्य युग की चारण कथाओ एव अपभ्रश की गाथाओ मे रूपातरित हुआ तथा आख्यानक आख्यायिका आदि अनेक नामो को धारण किया। देश काल के अनुरूप विभिन्न रूपो तथा नामो को धारण करके जनसाधारण की आध्यात्मिक तृषा को सन्तुष्ट करता हुआ जिज्ञासा तथा मनोरजन का साधन बना जिसकी परम्परा मध्य युग तक बराबर चलती रही तथा जिसका सम्पर्क आगे चलकर मुस्लिम कथा साहित्य से हुआ।

दाम्पत्य परिभाषा एव स्वरूप

'दाम्पत्य' शब्द अग्रेजी के 'कपल' (couple) का हिन्दी रूपान्तरण है। 'पुरुष और 'स्त्री का वह मिलन जो उन्हे पति और पत्नी बनाता है। दूसरे शब्दो मे वह विधि या कार्य जिसे विवाह कहा जाता है, के उपरान्त पति–पत्नी' को 'दम्पत्ति तथा उनका आपसी सम्बन्ध दाम्पत्य कहा जाता है। दम्पत्ति शब्द की व्याख्या करते हुए 'अमरकोश' मे "पति और पत्नी को 'दम्पती कहा गया है, तथा दम्पती के पर्यायवाची के रूप मे जपती', जायापती और 'भार्यापती' शब्द दिए गए है। [4]

भट्टोजिदीक्षित ने 'अमरकोष' की 'व्याख्या सुधा टीका मे दम्पत्ति शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है — दम्पत्ति ॥ जायश्य पतिश्च। गणे पाठाज्जाया शब्दस्य दम् दम भावो वा निपात्यते। [5]

समाज द्वारा मान्यता प्राप्त तरीके से स्त्री पुरुष की यौन–सम्बन्धी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए तथा वश वृद्धि हेतु आपसी मिलन को विवाह की सज्ञा दी जाती है। विवाह 'दाम्पत्य' जीवन की आधारशिला है। सस्कृत मे विवाह का अर्थ है – वि + वाह = ले जाना। विधि द्वारा विवाह के बाद ही स्त्री और पुरुष को दम्पत्ति का दर्जा दिया जाता है। भारतीय समाज मे स्त्री को अर्द्धांगिनी' तथा 'धर्मपत्नी' की सज्ञा दी गयी है, जिसका तात्पर्य है,

पुरुष का आधा भाग उसकी पत्नी है। महाभारत मे पत्नी को पति का उत्तम मित्र कहा गया है।

गृहस्थ सभी आश्रमो का द्वार है और उसे अन्य तीनो आश्रमो से श्रेष्ठ माना गया है। महाराज मनु ने लिखा है — सभी आश्रमो मे वेद और स्मृति के अनुसार चलने वाला गृहस्थ श्रेष्ठ कहा गया है क्योकि वह (ब्रह्चर्य, वानप्रस्थ और सन्यास) आश्रमो की रक्षा करता है। जैसे सभी नदी–नाले समुद्र मे ही आश्रय पाते है वैसे ही सभी आश्रम गृहस्थ से ही सहारा पाते है। [6]

विवाह का मूल उद्‌देश्य पुरुष और स्त्री को दाम्पत्य सूत्र मे पिरोकर नव जीवन प्रारम्भ करने की प्रेरणा देना है। भारतीय सस्कृति धर्म और जीवन दर्शन के अनुसार दाम्पत्य परिवार और समाज का वह आदर्श रूप है जिसमे पति–पत्नी दोनो धर्म अर्थ और काम को भोगते हुए मोक्ष प्राप्ति के अधिकारी बनते है। पवित्र और अखण्ड दाम्पत्य भारतीय सस्कृति की विशिष्ट उपलब्धि है। शिव–पार्वती, सावित्री–सत्यवान सीता–राम तथा नल–दमयन्ती आदि अखण्ड दाम्पत्य के दिव्य उदाहरण है।

जब हम भारतीय परिवेश मे दाम्पत्य–सम्बन्धो पर विचार करते है, तो पाते हैं कि इस देश मे नर–नारी सम्बन्धो का इतिहास मुख्य रूप से समाज मे नारी की स्थिति का इतिहास रहा है। वैदिक कालीन नारी पुरुष की तुलना मे बराबर की हकदार थी,

लेकिन मध्यकाल आते–आते वह पुरुष की तृप्ति एव भोग का साधन मात्र रह गयी। 'पुरुष तो अपनी काम तुष्टि के लिए भाति भाति के उपाय अपनाने लगा, किन्तु स्त्री के लिए अपने विवाहित साथी तक से कामतुष्टि प्राप्त करना असम्भव हो गया क्योकि वह उसके बारे मे किसी भी प्रकार की इच्छा व्यक्त नही कर सकती थी। [7]

दोहरे मानदडो की मान्यता परम्परागत रूप मे भारत मे आज भी विद्यमान है, स्वतत्रता के पचास–साठ वर्ष बाद भी उन्हे सही मायने मे बराबरी का दर्जा नहीं मिल पाया है। उनके प्रति पुरुष मानसिकता अत्यत सकुचित तथा बर्बर है। लगभग आधी महिलाए आज भी शोषण एव दमन की शिकार है। हरिदत्त वेदालकार ने लिखा है "यहाँ पुरुष के लिए नैतिक मानदडो मे पर्याप्त शिथिलता रही है, किन्तु नारी के लिए अक्षत योनित्व' तथा सतीत्व का पालन परम आवश्यक माना गया है। परिणाम यह हुआ कि स्त्रियो से आदर्श पातिव्रत्य की अपेक्षा रखी जाती है, किन्तु पुरुषो के लिए पत्नीव्रत होना आवश्यक नहीं है।" [8]

पाश्चात्य जीवन शैली एव उन्मुक्त समाज मे दाम्पत्य के नियम अत्यत लचीले है। विवाह के लिए धार्मिक बाध्यता न होने के कारण पूर्व की तुलना मे पश्चिम के आकडे अत्यत भयावह दृश्य उपस्थित करते हैं। 'इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटिनिका' मे दिए गये अमरीका के 'सेक्स अनुसधान सस्थान' के आकडे यह बताते है, कि–"कॉलेज मे शिक्षित लगभग 75 प्रतिशत पुरुषो ने तथा निम्न

सामाजिक स्तर वाले लगभग सभी पुरुषो ने विवाह पूर्व सम्भोग का स्वाद चखा है। इसी प्रकार 20 वर्ष तक की अवस्था वाली लगभग आधी अविवाहित लडकियॉ विवाह पूर्व सम्भोग कर चुकी है तथा तीस वर्ष के बाद विवाह करने वाली लगभग दो तिहाई लडकियॉ सभोग की दृष्टि से कुऑरी नही है।" [9]

वस्तुत पाश्चात्य जीवन शैली मे उन्मुक्त प्रणय–सम्बन्धो एव विवाहेतर सहवास को हेय दृष्टि से नहीं देखा जाता। वहॉ कोई भी स्त्री या पुरुष किसी भी विपरीत लिगी से सम्बन्ध बना सकता है। इसके लिए उन्हे न तो पति या पत्नी के सामने लज्जित होना पडता है और न ही समाज से जाति बाहर किए जाने का भय होता है।

वैदिक काल [10] मे दाम्पत्य का स्वरूप

समस्त प्राचीन भारतीय वाड्मय नारी को त्याग एव तपस्या की प्रतिमूर्ति मानता है। ऐसा विश्वास है कि सृष्टि के प्रारम्भ मे परमात्मा ने अपने को दो रूपो मे व्यक्त किया , आधे से वे पुरुष, आधे से नारी हो गये। धर्मप्राण भारत मे वेद, पुराण, स्मृति, इतिहास तथा प्राचीन सस्कृति मे स्त्रियो को पुरुषो की अर्द्धांगिनी माना गया है। [11]

वैदिक युगीन परिवार परस्पर आत्मीयता एव कर्त्तव्य निष्ठा की भावना से ओत–प्रोत थे। जिसमे आनदित एव सुखी पारिवारिक जीवन का आदर्श दृष्टिगत होता है। उदार शुभैषी तथा स्नेह एव प्रेम की भावना के बीच वैदिक युग मे पारिवारिक जीवन का विकास हुआ। [12] वैदिक ऋचाओ मे इस बात का सकेत प्राप्त

होता है कि विद्वान हम दोनो पति पत्नी को जाने, हम दोनो के हृदय जल के समान स्वच्छ और शान्त हो दोनो की प्राण शक्ति धारणा शक्ति और उपदेश ग्रहण शक्ति परस्पर कल्याणकारी हो। [13]

समस्त वेदो के सक्षिप्त रूपो पर दृष्टिपात करने से यह पता चलता है कि स्त्री को गृह स्वामिनी तथा परिवार की विधातृ भी माना गया है। स्त्री का ही दूसरा नाम घर कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण मे तो स्त्री को पुरुष का आधा भाग माना गया–[14]

"अर्द्धोह वा एष आत्मनो याज्जाया।

यावज्जया न विन्दते–असर्वोहि तावद्भवति।।

तथा पत्नी को अपने पति के प्रति मधुर व्यवहार करने की शिक्षा दी गयी है–[15]

'जाया पत्ये मधुमती वाच वदतु शातिवाम्'।

वैदिक मान्यताओ के अनुसार प्रजापति की सृष्टि रचना की कामना दो भागो मे प्रकट हुई–

"द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्धेन पुरुषोऽभवत्।

अर्धेन नारी तस्या स विराजय सृजत्प्रभु ।।

प्रजापति द्वारा द्विधा विभक्त स्वरूप की परिणति 'अर्द्धनारीश्वर रूप मे है। यही सृष्टि प्रक्रिया का मूल कारण है। शास्त्रो मे अर्धनारीश्वर के तात्विक स्वरूप की विस्तार से मीमासा की गयी है। प्रकृति–पुरुष, सोम–अग्नि, द्यावा–पृथ्वी, घोषा–तृषा, तथा माता–पिता आदि रूप मे एकत्व भाव का अधिष्ठान अर्द्धनारीश्वर रूप है। सृष्टि मे प्रत्येक पुरुष के भीतर नारी तथा प्रत्येक नारी के भीतर पुरुष की सत्ता सतत् विद्यमान है। ऋग्वेद के 'अस्यभावीय सूक्त' मे स्पष्टत कहा गया है कि –"जिन्हे पुरुष कहते है वे वस्तुत स्त्रियाँ हैं लेकिन इस रहस्य को आँखे वाला ही जान सकता

है—

'स्त्रिय सतीस्तॉ उमे पुस आहु पश्यद्अश्वाम विचेत वाद्य । [16]

कुछ वैदिक मत्रो से यह भी ज्ञात होता है कि स्त्रियॉ सगीत आदि मे निपुण होने के साथ–साथ पति के साथ युद्ध मे भी भाग लेती थी। [17] विशपला का अपने पति के साथ युद्ध मे भाग लेने का प्रमाण मिलता है जहॉ उसकी जॉघ टूट जाने पर अश्विनी कुमारो द्वारा उसकी चिकित्सा की गयी थी। 'वीरमित्रोदय के ''सस्कार–प्रकाश' मे स्त्रियो के दो विभाजन स्वीकार किए गये–एक ब्रह्मवादिनी तथा दूसरी सद्योद्वाहा । ब्रह्मवादिनी स्त्रियो को अग्निहोत्र, वेदाध्ययन तथा अपने घर मे शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार था। दाम्पत्य सम्बन्धो का प्रथम सोपान विवाह था। जिसके द्वारा पति पत्नी के मधुर सम्बन्धो की नीव पडती है। वर कन्या को वधू के रूप मे ग्रहण करते समय उसका हाथ पकड कर कहता था–

''गृहणामि ते सौभागत्वाय, हस्त,

मया पत्या जरदिष्टर्यथास ।

भगो अर्यमा, सविता, पुरिन्धिर्मह्य

ह्य त्वादुगार्हपत्यायदेवा

ऋग्वेद 10। 88। 36

'कल्याणी । मैं तुम्हारे और अपने सौभाग्य के लिए तुम्हारा हाथ पकडता हूँ। तुम पति के साथ वृद्धावस्था तब बनी रहो। भग अर्यमा, सविता, पुरन्धि आदि देवताओ ने गृहस्थ धर्म की रक्षा के लिए मुझे तुझको दिया है।'

हिन्दू धर्म मे पति–पत्नी एक दूसरे के सखा और

सहधर्मी है। दोनो का स्थान समान है। सप्तपदी के विधान मे कहा गया है कि तुम दोनो दम्पत्ति कभी एक दूसरे से अलग न होना।'[17] आपस्तम्ब धर्मसूत्र मे लिखा है कि–

जायापत्योर्न विभागो दृष्यते

पाणिग्रहणाद्धि सहत्व कर्मसु

तथा पूण्यफलेषु द्रव्यपरिग्रहेषु ग्रहेषु च।

स्त्री और पति मे कोई विभाग या बटवारा नही देखा जाता। दोनो एक है पति जब पाणिग्रहण कर लेता है, तबसे प्रत्येक कर्म मे दोनो का सहयोग अपेक्षित रहता है। पूण्य सग्रह तथा द्रव्य सग्रह मे भी दोनो का समान अधिकार है। शतपथ ब्राह्मण मे कहा गया है कि "पत्नी के बिना पति स्वर्ग नही जा सकता।' स्वर्ग आदि की कामना से होने वाले यज्ञो मे पत्नी की उपस्थिति अत्यत आवश्यक मानी जारी थी।

सम्पूर्ण वैदिक साहित्य के अनुशीलन से दृष्टव्य होता है कि वेदो मे नारी का पत्नी रूप मे, बडा ही सम्मान था।[18] वे घर को नहीं अपितु नारी को ही घर मानते थे।[19] गृहस्थ धर्म की प्रतिष्ठा, एक मात्र गृहिणी पर ही निर्भर रहती थी। स्त्री को अपने लिए जिस नियत धन की प्राप्ति होती थी उस पर एकमात्र उसी का अधिकार होता था। वह दान–पुण्य इत्यादि मे स्वेच्छा से उसका उपयोग करती थी। प्राचीन काल मे सदा से नारी आदर योग्य समझी जाती थी। पति–पत्नी का सम्बन्ध बडा ही आदर्श एव पावन था। पत्नी सामाजिक अवसरो एव शुभ कार्यो मे पति का सहयोग करती थी। पति के अधीन रहते हुए भी उसको सर्वाधिकारी समझा जाता था। पत्नी पति की अनुव्रता थी अर्थात् उत्तम धन, उत्तम सतान तथा उत्तम भाग्य के साथ पति के अनुकूल उसकी सहभागिनी बनकर उसको मोक्ष देने वाली थी। पतिव्रता धर्म नारी का एकमात्र तप था, जिसके बल पर उसके सूर्य को भी उदय होने

से रोक लिया था।[20] अगस्त्य पत्नी लोपामुद्रा के सयम मर्यादा तप त्याग और पतिव्रता धर्म की कथा आज भी आद से गायी जाती है। वैदिक युग की दिव्य गुणो से युक्त नारी को पुरुष वर्ग देवी के समान पूजता था। इनका दाम्पत्य जीवन सभी दृष्टियो से सम्पन्न एव मधुर था ऐसा उक्त विवेचन से आभासित होता है।

सभवत इस युग के दाम्पत्य जीवन मे सघर्ष की वे स्थितिया नही थी, जो आधुनिक युग मे दिखायी देती है। यद्यपि पत्नी के रूप मे स्त्री यहॉ भी पुरुष के अधीन ही थी, तथा उस अधीनता मे उनके दाम्पत्य जीवन मे सामजस्य एव विचारशीलता थी।

रामायण काल में दाम्पत्य का स्वरूप

हिन्दू सस्कृति का जैसा सागोपाग निरूपण रामयुगीन कथाकाव्यो मे दृष्टव्य होता है, अन्यत्र दुर्लभ है। विभिन्न विषयो के साथ नारी के विविध स्वरूपो का सूक्ष्म चित्रण मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रस्तुत हुआ है। भारतीय सस्कृति के मूल स्रोत वाल्मीकि रमाायण मे आदि कवि ने तत्कालीन सस्कृति का सच्चा मापदड नारी समाज को ही माना, तथा नारी को कथ्य मे मोड देने का प्रमुख आलबन बनाया है। राम सबधी–काव्यो मे दाम्पत्य को प्रेम रूपी सरिता का उद्‌भव स्थल माना जाता है। नारी माधुर्य, सुशीलता, लज्जा, स्नेह, निःस्वार्थता, त्याग, सहनशीलता, विश्वास, उदारता सरलता आदि गुणो से परिपूर्ण है, ऐसा माना गया है। नारी पति के विपत्तियो से घिरे हुए मार्ग को सरल बनाती है, तथा उसके मानसिक सस्कारो के निर्माण मे भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। विपत्तियो के समय भी नारी अपने समस्त ऐश्वर्यो का परित्याग कर पति का साथ देती है। इसका प्रमुख उदाहरण जगत् जननी प्रेममूर्ति सीता से अच्छा क्या हो सकता है।

रामायण काल मे पतिव्रता नारियो को समाज मे यथेष्ट

आदर और सम्मान प्राप्त था। समाज मे पति के हितकर कार्यों मे सलग्न रहने वाली नारी आदरणीय मानी जाती थी तथा यह भी धारणा थी कि, पति की इच्छा का महत्व करोडो पुत्रो को प्राप्त करने से भी अधिक होता है। ऋषि वाल्मीकि ने लिखा है, कि –'समाज मे उन्ही नारियो का आदर होता था, जो सत्य, सदाचार शास्त्रो की आज्ञा तथा कुलोचित मर्यादा मे स्थित रहते हुए पति को सर्वश्रेष्ठ देवता मानती थी।[21] राजाओ मे बहुपत्नी प्रथा विद्यमान थी। धार्मिक कार्यों मे पति के साथ पत्नी की उपस्थिति अनिवार्य थी। राम ने सीता की अनुपस्थिति मे उनकी स्वर्णमयी प्रतिमा बनवाकर अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न किया था। तुलसीकृत रामचरितमानस मे पतिव्रत धर्म की महिमा बताते हुए सती अनुसुइया जी कहती है–

(1) 'बिनु श्रम नारि परम गति लहई।
पतिव्रत धर्म छाडि छल गहई।।

(2) सहज अपावनि नारि, पति सेवत शुभ गति लहई।
जस गावत श्रुति चारि, अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय।।

रामायण कालीन कथा काव्यो मे नारी को सदैव पुरुषो की आश्रित माना गया है। यद्यपि वैदिक काल मे भी वो पुरुषो की अधीनस्थ दिखायी देती है, किन्तु वहॉ अधीनता की जकड मे उसके स्वतत्र जीवन के सूत्र भी उपलब्ध होते है। वैदिक कालीन विदुषी स्त्रियो का दाम्पत्य जीवन उक्त तथ्य की घोषणा करता है। आदि कवि के अनुसार वह[22] "कन्या रूप मे पिता, पत्नी रूप मे पति तथा माता रूप मे पुत्र द्वारा रक्षित है।" आदिकवि के उक्त कथन से यह स्पष्ट हो रहा है, कि पत्नी के रूप मे वैदिक कालीन स्त्री की तुलना मे रामायण कालीन पत्नी का जीवन सकुचित हो गया था। हॉ इतना अवश्य है, कि पति के अधीन रहते हुए वह मनोरजक उत्सवो, धार्मिक समारोहो, प्रदर्शनो इत्यादि मे पति के साथ शामिल होने की पूर्ण अधिकारिणी थी। आदि कवि स्वयवर,

यज्ञ, उत्सव विवाह आदि अवसरो पर नारियो का दूसरो की दृष्टि मे आना निर्दोष मानते हैं।[23] अयोध्या मे सीता तथा सुग्रीव की पत्नियॉ रथारूढ होकर नगर की शोभा देखने गयी थीं।

बसन्त ऋतु मे होने वाले मदनोत्सव पर नारियॉ बहुमूल्य वस्त्राभूषणो से सुसज्जित होकर अपने पतियो के साथ कामदेव की पूजा के उपरान्त मदिरा पान भी करती थी। सुरापान आदि की प्रथा एक वर्ग विशेष की स्त्रियो (रनिवास) तक ही सीमित थी जो कि पतियो के सानिध्य मे ही सभव थी। किन्तु इस प्रकार की स्वतत्रता होने पर भी राज परिवार की महिलाए पुरुषो तथा सामान्य जनता की दृष्टि से अदृश्य ही रहती थी।

नारिया पति प्रदत्त धन या दहेज मे मिले हुए धन की स्वामिनी होती थी। इसे तत्कालीन ग्रथो मे स्त्रीधन कहा गया है। अपनी मर्जी के अनुसार दान पुण्य आदि कार्यो पर इस धन को उन्हे खर्च करने की स्वतत्रता थी। रामायण काल मे कुछ विशेष परिस्थितियो मे पत्नी परित्याग की प्रथा भी प्रचलित थी। पति, पत्नी की क्रूरता दुष्टता तथा हठ के कारण सदैव के लिए उसका परित्याग कर देता था, तथा अपने मृत्योपरात कर्मो मे भाग लेने का निषेध कर देता था। राजा दशरथ ने कैकेयी के क्रूर कर्म के कारण ही उसका परित्याग कर दिया था।[24] लोकापवाद के कारण पत्नी त्याग का सबसे ज्वलत उदाहरण जगत्जननी सीता है, जिन्हे मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम ने लका विजय के उपरान्त त्याग दिया था।

इन अपवादो के बावजूद नारी जाति को समाज मे आदर और सम्मान की दृष्टि से भी देखा जाता था। पुरुष पराई स्त्री के मुख की ओर दृष्टि उठाकर भी नहीं देखता था। रावण के अन्त पुर मे सोई हुयी स्त्रियो को देखकर हनुमान के मन मे यह शका उत्पन्न हुयी, कि पराई स्त्रियो का दर्शन मेरे धर्म का विनाशक बन जायेगा। इस दृष्टात से यह आभास मिलता है कि रामायण काल मे पर स्त्री के प्रति सम्मान का भाव विद्यमान था। राम कथा

काव्यो मे आर्य तथा अनार्य दोनो समाजो मे नारी के पत्नी रूप का स्पष्ट उल्लेख हुआ है। महाकवि **बाल्मीकि** का कथन है कि "पत्नी पति की दासी सखी, बहन तथा मॉ की भॉति सेवा करती है। [25] आदि कवि ने पत्नी की तुलना पति के छाया से की है। सतीत्व ही प्रत्येक नारी का सबसे बडा गुण कहा गया है। पति की प्रशसा प्राप्त करने के लिए स्त्रिया सौत का अस्तित्व भी स्वीकार कर लेती थी। पत्नियॉ पति को कुमार्ग पर जाने से रोकना अपना धर्म समझती थी। तारा तथा मदोदरी ने भी अपने पतियो का कुमार्ग पर चलने से रोका था। पत्नी की प्रतिष्ठा का पूर्णतया ध्यान रखा जाता था। अन्य कोई पुरुष यदि पत्नी का स्पर्श भी कर देता पति उस व्यक्ति का वध तक करने को तत्पर हो जाता था। बालि और दुन्दुभि की शत्रुता स्त्री के कारण हुई। [26] राम–रावण युद्ध का मूल कारण पत्नी ही थी। जगत जननी जानकी का चरित्र भारतीय पत्नियो के महान आर्दश का प्रतीक है। बाल्मीकि रामायण के अनेक प्रसग इसके साक्षी है। रावण को सीता द्वारा कहे गये अवहेलना पूर्ण वचन नारी के गौरव को सदा उद्घोषित करते रहेगे। वह कहती है – "इस निशाचर रावण से प्रेम करने की बात तो दूर है, मै इसको अपने बाए पैर से भी स्पर्श नही कर सकती, सीता के इस कथन से पत्नी का गौरव सिद्ध होता है –

'चरणेनापि सत्येन न स्पृश्ये निशाचरम्।

रावण कि पुनरह कामयेय विगर्हितम्।। [27]

5/26/10

अयोध्या लौटने पर, प्रजा को आशवस्त करने के लिए राम ने विवश होकर जब सीता का परित्याग करने की बात कही तो सीता बड़े मार्मिक रूप मे अपने मन की व्यथा प्रकट करते हुए कहती है कि – "मनुष्य उसी वस्तु के लिए उत्तरदायी होता है, जिस पर उसका अधिकार होता है। मैं अपने हृदय की स्वामिनी हूँ,

उसे मैने अपने वश मे रखा है, वह सदा ही आपके चिन्तन मे निरत है। अग तो पराधीन है यदि रावण ने बलपूर्वक एव छलपूर्वक उनका स्पर्श कर लिया तो उसमे मेरा क्या अपराध है।

मदधीन तु यत तन्मे हृदय त्वयिवर्तते।

पराधीनेषु गात्रेषु कि करिष्याम्यनीश्वरा।।[28]

सम्पूर्ण रामायण का अवगाहन करने के उपरान्त यही निष्कर्ष निकलता है, कि तत्कालीन समाज मे सती साध्वी एव पति का अनुसरण करने वाली नारियाॅ श्रेष्ठ एव आदरणीय मानी जाती थी। ममता एव विश्वास की केन्द्रस्थली नारी पवित्र प्रेम की ज्योति से दाम्पत्य जीवन की सफलता हेतु आत्म सर्म्पण कर देती थी। कहा जा सकता है, कि दाम्पत्य जीवन की समृद्धि के लिए स्त्री को ही त्याग करना पडता था। समाज की सारी अपेक्षाए भी उसी से थी। वाल्मीकि रामायण मे सीता जी के तर्कपूर्ण कथन इस तथ्य के प्रमाण है, कि अपनी पवित्रता के प्रति आश्वस्त करने की चेष्टा करते हुए भी वे अपने दाम्पत्य जीवन को सुरक्षित नही रख सकी आखिर उन्हे परित्यक्त होना ही पडा।

सक्षेप मे कहा जा सकता है कि रामायण कालीन परिवार मे दाम्पत्य जीवन को सुखी और सामजस्यपूर्ण बनाने का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व नारी का ही था। उसके चरित्र अथवा उसके आचरण पर किचित मात्र सदेह होने पर पुरूष को यह पूर्ण अधिकार था, कि वह उसका परित्याग कर दे और समाज की सम्पूर्ण व्यवस्था भी पति के इस आचरण का अनुमोदन करती थी।

महाभारत काल में दाम्पत्य का स्वरूप

विविध धर्मशास्त्रीय ग्रन्थो के समान ही महाभारत काल मे भी नारी विशिष्ट एव गौरवपूर्ण स्थान पर प्रतिष्ठित रही है। वह रक्षणीय के साथ–साथ अवध्य भी मानी गयी है – "अवध्यास्तु

स्त्रिय।'[29] स्त्रियो का प्रमुख कार्य क्षेत्र पति गृह ही होता था। कण्व शकुतला को उपदेश देते हुए कहते हैं कि स्त्रियो के भाई–बन्धुओ के घर अधिक रहने से उनकी कीर्ति, शील तथा पतिव्रत धर्म का नाश होता है।[30] पति के घर मे ही वह गुरुपद पाती थी – नास्ति मातृ समो गुरु।[31] महाभारत मे सबसे अधिक समाहृत रूप माता का ही है–पत्नी का नहीं। पृथ्वी को मातृ सदृश ही माना गया है किन्तु गुरुत्व मे माता पृथ्वी से श्रेष्ठ बताई गयी है।

सिद्धान्तत नारी को अवला एव अपनी रक्षा करने मे असमर्थ माना जाता था। अत स्त्रियो की रक्षा मे तत्पर रहना पुरुष समाज का प्रमुख कर्तव्य था। मनुस्मृति के समान महाभारत मे भी कहा गया कि स्त्री स्वतत्रता के योग्य नहीं है –

'पिता रक्षति कौमारे मर्ता रक्षति यौवने।

पुत्रश्च स्थविरे भावे न स्त्री स्वातल्यमर्हति।'[32]

पत्नी के लिए पातिव्रत धर्म अनिवार्य था जिसका स्वरूप अत्यत व्यापक था। महाभारत काल मे अन्य सामाजिक मर्यादाओ के समान ही पारिवारिक तथा दाम्पत्य जीवन की अनेक मर्यादाए प्राय निश्चित हो चुकी थी। मर्यादा का अतिक्रमण न करने वाला व्यक्ति आदर्श माना जाता था। यहॉ दाम्पत्य जीवन का सौख्य एव स्थैर्य बहुत कुछ पत्नी पर निर्भर था। इसी कारण आदर्श पत्नी के अनेक मानक एव लक्षण महाभारत मे उपलब्ध होते है। 'पतिव्रतात्व भार्याया परमो धर्म उच्चते कथन से स्पष्ट है कि पतिव्रता को ही आदर्श पत्नी माना जाता था। यह भी कहा गया कि पत्नी वही है जो गृह कार्य मे दक्ष है, अपत्यवती एव पतिव्रता है–

"सा भार्या या गृहे दक्षा, सा भार्याया प्रजावती।

सा भार्या या पतिप्राणा, सा भार्या या पतिव्रता।।[33]

आदर्श पत्नियॉ वे है जो जीवन यात्रा के विभिन्न अवसरो पर विविध भूमिकाओ मे दाम्पत्य जीवन को सुखमय बनाती है। ऐसी पत्नियॉ अकेलेपन मे मधुरभाषिणी सखियॉ धर्म कार्यो मे पिता एव आर्तावस्था मे माता की तरह होती है। पतिव्रता स्त्रियो का सामाजिक दायित्व भी काफी विस्तार किए होता था। उन्हे ब्राह्मणो दुर्बलो, अनाथो आदि का भरण पोषण करना पडता था।

भारतीय सस्कृति मे वैदिक काल से ही बहुपत्नीत्व प्रथा प्रचलित थी। सामाजिक दृष्टि से मान्य होते हुए भी विवाह के वैदिक आदर्शो के अनुकूल न होने के कारण इसे एक पत्नीत्व के समान लोकप्रियता नहीं प्राप्त हो सकी। भारतीय परम्परा और आदर्शो के अनुसार एक पत्नीत्व ही आदर्श रूप मे स्वीकृत होता रहा है। फिर भी महाभारतकार ने बहुपत्नीत्व प्रथा को अधम घोषित नही किया है, सभवत इसीलिए यह प्रथा बहुश दिखायी पडती है—

न चाप्य धर्म कल्याण बहुपत्नीकता नृणाम्।

स्त्रीणामधर्म सुमहान् भर्तु पूर्वस्य लघने।।'[34]

दक्ष जरासन्ध आदि ने अपनी एक से अधिक पुत्रियो का विवाह एक ही वर के साथ किया था। विचित्रवीर्य की तीनो पत्नियॉ – अम्बा, अम्बिका, अम्बालिका एक ही राजा (काशीराज) की कन्या थीं। धृतराष्ट्र का विवाह गाधारी आदि दस बहनो के साथ हुआ था। दुष्यत पुत्र भरत की तीन पत्नियॉ थी, जिनसे नौ पुत्र उत्पन्न हुए। ययाति की दो पत्नियॉ देवयानी तथा शर्मिष्ठा का उल्लेख भी मिलता है। यहॉ तक कि वासुदेव कृष्ण की सोलह हजार पत्नियॉ परम्परागत रूप से बतायी गयी है। इन सम्पूर्ण स्थितियो को देखते हुए बहुपत्नीत्व के इस युग मे दाम्पत्य जीवन कितना सुखी रहा होगा, तथा दाम्पत्य जीवन मे सुख एव सौहार्द की क्या स्थितियॉ होती होगी, यह सहज ही कल्पित हो सकता है।

बहुपत्नीत्व की ही भाति महाभारत मे बहुभर्तृता का

एक रोचक उदाहरण द्रोपदी का पॉचो पान्डवो के साथ विवाह भी प्राप्त होता है। लेकिन यह प्रथा सर्वमान्य तथा सर्वग्राह्य कदापि नही थी। इसका विरोध करते हुए द्रुपद ने कहा है –

एकस्य वह्व्यवो विपिता महिष्य कुरुनन्दन।

नैकस्या वहव पुसो विधीयन्ते कदाचन।।

लोक वेद विरूद्ध त्व नाधर्म धार्मिक शुचि।

कर्तुमहसि कौत्तेय कस्मात्ते बुद्धिरीदृशी।। [35]

'हे कुरुनन्दन, एक राजा की बहुत सी रानिया बताई गयी है, परन्तु एक स्त्री के लिए अनेक पुरुषो का विधान कही नहीं है। यह लोक व्यवहार तथा वेद के विरुद्ध है। तुम जैसे धर्म परायण एव पवित्रात्मा को यह अधर्म नही करना चाहिए।''

लेकिन युधिष्ठिर ने अपनी मॉ की बात झूठी न होने पाए का वहाना लेकर इसे सही ठहराया तथा इसकी पुष्टि के लिए कुटिला गौतमी का उदाहरण भी दिया जिसने सप्तर्षियो का वरण किया था। लेकिन युधिष्ठिर और व्यास के नानाविध समाधान प्रस्तुत करने के वाद भी तत्कालीन समाज मे दाम्पत्य का यह रूप धर्मानुमोदित कतई नही था।

महाभारत मे किसी भी ऐसी स्त्री का उल्लेख प्राप्त नही होता, जिसने स्वविवेक से अपने कुमार्ग गामी पति का उचित मार्गदर्शन किया हो। इस सदर्भ मे गाधारी का उदाहरण इस बात का प्रमाण है कि वह पुत्र मोह से ग्रसित धृतराष्ट्र का मार्गदर्शन न करके स्वय भी उसी गलत मार्ग का अनुसरण करते हुए, भावुकतावश आजीवन ऑखो पर पट्टी बाधे रही। पति का अनुसरण करना ही उनके दाम्पत्य जीवन की सीमाए थीं।

इस प्रकार महाभारत कालीन दाम्पत्य जीवन का इतिहास नारियो की दृष्टि से अनेकानेक उतार चढावो से भरा हुआ है।

तत्कालीन समाज दाम्पत्य के सबध मे ह्रासशील प्रवृत्तियो का ही चित्र उपस्थित करता है। परिवार के सदर्भ मे यदि पत्नियो की स्थिति पर विचार किया जाय तो उनका दाम्पत्य बहुत सतोषजनक नही था।

महाभारत की अनेक नारिया जैसे वृद्ध एव अध पति की सेवा करने वाली सुकन्या क्रोधी एव वृद्धपति को विभिन्न उपायो से प्रसन्न रखने वाली जरत्कारू ऑखो पर पट्टी बाधने वाली गाधारी आदि पत्नियो की व्यथा–कथा को किसी महाभारतकार ने व्यक्त करना आवश्यक नहीं समझा। यदि यह कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी, कि तत्कालीन पडित वर्ग स्त्रियो के पातिव्रत्य और आदर्श रूप के व्यामोह मे ही उलझा रहा।

मध्यकाल मे दाम्पत्य का स्वरूप

इतिहास मे मध्यकाल का प्रारम्भ अरबो के भारत पर आक्रमण (712 ई0) से माना जाता है। यह समय देश के इतिहास और समाज के लिए अराजकता और अस्थिरता का था। व्यक्तिवाद की भावना से पूर्ण छोटे–छोटे राज्यो के शासक आपस मे अहर्निश लडने–झगडने मे ही लगे रहते थे। फलत इस्लाम की शक्ति का सरक्षक बनकर महमूद ने 'काफिरो' के देश को पदाक्रान्त करके उनके देव मदिरो मे स्थापित धर्म भावना के प्रतीक 'बुतो' को ध्वस्त किया। इसके बाद का भारतीय इतिहास इस्लामी शक्ति तथा भारतीय नरेशो के सघर्ष तथा उभय–पक्ष के जय–पराजय का इतिहास है। सामाजिक रूप से जर्जर इस युद्ध प्रभावित जीवन मे कही भी सतुलन नहीं था। जनता पर विदेशी राजाओ के अत्याचारो के साथ–साथ युद्ध कामी देशी राजाओ के अत्याचारो का क्रम भी बढता गया।

सामन्तवादी व्यवस्था मे नारी एक मात्र भोग बिलास की वस्तु के रूप मे परिवर्तित हो गयी। वैदिक काल मे जो नारी माता

और पत्नी के रूप मे परम आदरणीय थी वही अब मात्र युद्ध का साधन और हरम की शोभा बन गयी। उसका सर्वोच्च कर्तव्य पति सेवा और विभिन्न प्रकार का साज–श्रृगार करके उसे रिझाना मात्र रह गया। युग की भोग–प्रधान वासनात्मक मनोवृत्ति के अनुसार नारी केवल काम तृप्ति का साधन मात्र रह गयी। सामतवादी आदर्श के अनुसार वैभव और विलास की अनिवार्य सामग्रियो मे से एक नारी भी थी कहने का भाव यह है कि नारी एक वस्तु के रूप मे प्रतिष्ठित होती गयी। नारी की इस स्थिति के लिए उत्तरदायी कारण उनमे मूल रूप से शिक्षा का अभाव था। मुस्लिम आक्रमण के फलस्वरूप समाज मे पर्दा–प्रथा का प्रचार व्यापक रूप से हुआ। पर्दे की प्रथा के प्रचार ने भी स्त्रियो की शिक्षा मे अवरोध उत्पन्न किया। इस काल मे हिन्दू स्त्रियो मे साक्षरता केवल राजपूत और ब्राह्मण महिलाओ मे थी।[36] उच्चवर्ग मे घर पर ही अध्यापक द्वारा शिक्षा मिलती थी, लेकिन सामान्य मध्य या निम्न वर्ग की नारियो के लिए शिक्षा की कोई समुचित व्यवस्था नही थी। शिक्षा से वचित हो जाने के बाद नारी को सभी पारिवारिक बुराइयो की जड के रूप मे प्रतिष्ठित कर दिया गया।

तत्कालीन समाज मे फारसी जीवन दर्शन और मुस्लिम शासन के आन्तरिक शान्ति की क्रीडा मे विलास और वैभव को प्रधानता देने वाली, सामन्ती परम्परा अपने अभिनव रूप मे पनपी। शासक विलासप्रिय बने और शासित उनका अनुकरण करने मे प्रतिष्ठा और गौरव समझने लगे। प्राचीन काल की नारी भावना और मध्ययुगीन नारी भावना मे सबसे बडा अतर यह दिखायी देता है, कि नारी का समादृत रूप लुप्त होता चला गया तथा विलास के उद्दाम वेग के समक्ष तत्कालीन समाज की परम्परा मे नैतिकता और सदाचार के बधन और नियम केवल एक पक्ष पर ही घटित होने लगे। नारी तो बहुत पहले से पराधीन और विवश होकर अनादर की पात्री थी, शिक्षा और उपनयन के अभाव मे उसकी

गणना शूद्रो मे होने लगी। वह यज्ञ उपासना आदि धार्मिक कार्यों मे पति की सहधर्मिणी न होकर जीवन के कतिपय मादक क्षणो की सगिनी मात्र होकर रह गयी।

समाज मे नारी के प्रति दो विरोधी मनोवृत्तिया व्याप्त थीं एक ओर आध्यात्मिकता को प्रधानता देने वाला विरागी वर्ग उसको मानवोन्नति मे अवरोध मानकर उससे दूर रहने का निर्देश देता था दूसरी ओर विलास और भौतिकता प्रधान वर्ग उसे जीवन की अत्यावश्यक सामग्री मानकर उसके सानिध्य को सुखमय मानता था। ऐसे मे एक सामान्य नारी का दाम्पत्य जीवन भी प्रभावित होता था। पुरुष सत्तात्मक उस समाज मे एक सामान्य नारी की वेदना सुनने वाला सभवत कोई नही था। निग्रह एव आत्म दमन, आज्ञापालन एव पति परायणता का उपदेश पाकर अपनी सामाजिक मान्यताओ एव परम्पराओ मे केन्द्रित नारी आदर या अनादर का भाव न रखते हुए अपनी सारी जिन्दगी व्यतीत कर देती है। जैसा कि भागवत शरण ने लिखा है—[37] "712 ई0 के मुहम्मद बिन कासिम के आक्रमण से लेकर 1707 मे मुगल साम्राज्य के पतन तक भारतीय शालीनता का इतिहास नारी अपने रक्त से लिखती रही। यह इतिहास हजार वर्षो के जौहर का इतिहास था, ससार की जातियो का आना—जाना भारत की बार—बार की पराजय का मूल्य भारतीय नारी के गौरव का वितन्वक।

भारत मे इस्लाम के साथ सम्पर्क ने परोक्ष रूप से उसकी नारी भावना को भी प्रभावित किया। इस्लामी सस्कृति जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे नव जागृति का सन्देश लिये थी। मुहम्मद साहब की उदारता ने इस्लाम की धर्म पुस्तक कुरान मे स्त्री पुरुष को समान पद दिया तथा इस्लाम मे उसकी कानूनी स्थिति भी श्रेष्ठ थी। जहॉ हिन्दू स्त्री को साधारण दशा मे केवल माता के स्त्रीधन पर ही अधिकार प्राप्त था, इस्लाम मे पुत्री, माता बहिन तथा पत्नी के रूप मे नारी को सम्पत्ति मे उत्तराधिकार प्राप्त था।[38] मुहम्मद

साहब के पूर्व अरब मे पुत्री जन्म एक अभिशाप समझा जाता था। बर्बर अरब कन्या के उत्पन्न होते ही उसे भूमि मे गाड देते थे। उनके यहा कब्र ही सबसे उपयुक्त दामाद समझा जाता था। मुहम्मद साहब से मातृशक्ति का यह अनादर देखा नहीं गया इसलिए उन्होने अमर्यादित सामाजिक जीवन की समाप्ति के साथ ही विवाह की सख्या का सीमा निर्धारण भी कर दिया। भारत मे मुसलमानो ने अरबी आर्दश का अनुकरण किया जिसने स्त्री को अत्यत निम्न स्तर पर रखा था। इस्लाम के पवित्र नियमो ने पुरुषो को नवीन विश्वास एव दृढता प्रदान की किन्तु नारी की दशा मे दु ख और दैन्य ही प्रधान रहा।[39] मुस्लिम शासको तथा सामतो मे अपने हरम मे अधिकाधिक सुन्दर स्त्रिया रखने की होड रहती थी। हरम के सीमित जीवन मे विचारो के आयात–निर्यात का अवसर उपलब्ध न होने के कारण मुस्लिम नारी की बुद्धि सकीर्ण हो गयी। उनकी धारणाए अगतिशील बन गयी और जीवन के प्रति दृष्टिकोण सीमित और सकुचित हो गया। कमोवेश रूप मे यह कहा जा सकता है कि मध्यकालीन नारी का दाम्पत्य जीवन किसी भी प्रकार उसके स्वतत्र अस्तित्व की घोषणा नही करता स्वय विलासी जीवन का उपभोग करती हुयी उच्च वर्ग की ये नारियॉ भी स्वय को भोग्या के रूप मे ही प्रस्तुत करती थीं। नारी जीवन की इन विसगतियो एव विडम्बनाओ के बीच हिन्दू तथा मुस्लिम समाज मे उच्च वर्ग की कुछ ऐसी भी स्त्रिया थी, जिन्होने अपनी वीरता विद्वता अथवा कला कौशल से मध्यकालीन समाज मे अलग पहचान बनायी है। पहली मुस्लिम महिला शासिका रजिया एक वीर तथा न्याय प्रिय स्त्री थी। जहॉगीर की राजमहिषी नूरजहा अद्वितीय सुन्दरी होने के साथ–साथ राजनीति तथा कला मे भी निपुण थी। हुमायूॅ की बहन गुलबदन बेगम ने 'हुमायूॅनामा' लिखकर अपनी विद्वता का प्रमाण प्रस्तुत किया है। औरगजेब की पुत्री जैबुन्निसा एक अच्छी कवियित्री होने के साथ–साथ सुन्दर लिखवट मे भी निपुण थी। हिन्दू समाज मे उच्च वर्ग की राजपूत नारियो का दाम्पत्य जीवन

जरूर भिन्न दिखायी देता है। चित्तौड की महारानी पद्मिनी सुन्दर होने के साथ–साथ एक वीर महिला थीं। महारानी दुर्गावती और चॉदबीबी जैसी नारियो ने अपनी वीरता तथा शौर्य से मुगल सम्राटो के भी दॉत खट्टे कर दिये थे जहॉ उन्हे बहुत से अधिकार भी प्राप्त थे एव उनके राजा पति राजकाज मे भी उनकी सलाह लिया करते थे।

लेकिन कुल मिलाकर मध्यकालीन सर्वसाधारण समाज नारी जीवन और उसकी उपेक्षा का एक वीभत्स चित्र ही उपस्थित करता है।

नारी के प्रति उस समाज का दृष्टिकोण पूज्यनीय भावना से हटकर भोग्या की भावना से ग्रस्त हो गया। परिवार तथा समाज मे उसका अपना कोई स्वतत्र व्यक्तित्व नहीं रह गया। अपने अतपुर मे ज्यादा से ज्यादा सुन्दरियो को रखना ही राजा की प्रतिष्ठा का अग था। जो नारियो के दाम्पत्य को विखडित करता है। शिक्षा से वचित और पर्दे मे कैद नारी की वे समस्त भूमिकाए जो पूर्व वैदिक काल मे उसे आदर और सम्मान दिलाती थी, पूरी तरह गौण हो गयी, केवल भोग्या और प्रेयसी रूप सर्वत्र प्रधान हो गया।[40] इस स्थिति मे परिवर्तन पुनर्जागरण के बाद ही परिलक्षित हुआ जब नारी मुक्ति आदोलन तथा धार्मिक समाज सुधार आदोलन ने नारी के पक्ष मे एक दीर्घ मुक्ति सग्राम छेड दिया, इसकी विवेचना अगले अध्याय मे सविस्तार की गयी है।

पाद-टिप्पणी

1 वैदिक कहानियॉ, बलदेव उपाध्याय – भूमिका पृष्ठ 6

2 सस्कृत साहित्य का इतिहास – बलदेव उपाध्याय पृष्ठ 45

3 हितोपवेश (भाषान्तर श्री आनन्द) भूमिका।

4 'दपती, जपती जायापती भार्यापती च तौ। – अमरकोष काण्ड 2 श्लोक 38 पृष्ठ 214।

5 व्याख्या सुधा सामाश्रमीटीका, भट्टोजि दीक्षित।

6 मनुस्मृति अध्याय 6, श्लोक 89 90 पृष्ठ 195

7 लव मैरिज और सेक्स डा प्रमिला कपूर पृष्ठ 261 262

8 हिन्दू परिवार मीमासा – हरिदत्त वेदालकार पृष्ठ 133

9 वर्तमान हिन्दी महिला कथा लेखन और दाम्पत्य जीवन साधना अग्रवाल पृष्ठ 16

10 1600 ई पू।

11 श्री राघवाचार्य – कल्याण नारी अक पृष्ठ 22

12 वाचस्पति गैरोला – वैदिक साहित्य एव सस्कृति पृ 376

13 वहीं पृष्ठ 376

14 वहीं पृष्ठ 376

15 वहीं पृष्ठ 376

16 वही पृष्ठ 396

17 कल्याण नारी विशेषाक पृष्ठ 94

18 वहीं पृष्ठ 105

19 वहीं पृष्ठ 103, 106

20 वैदिक साहित्य एव सस्कृति पृष्ठ 398

21 बाल्मीकि रामायण – अयोध्याकाड 61–24

22 रा पु 114–28

23 रा अयो 14–14–17 42

24 रा उ 48–13 17–18

25 रा अयो 12–69

26 रा कि 9–4

27 रा 5–26–10

28 कल्याण – नारी अक पृष्ठ 100

29 महाभारत आदिपर्व – 216–4

30 वही 68–11

31 वही, उद्योग पर्व 33–79

32 अनुशासन पर्व – 81–14

33 आदि पर्व 68–39

34 वही 146–34

35 वही 187–26–27

36 अल्तेकर–आइडियल ऐन्ड पोजीशन आफ हिन्दू वीमेन इन सोशल लाइफ–पृष्ठ 42

37 भागवत शरण–भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण पृष्ठ 264

38 भारतीय समाज सस्कृति तथा सस्थाए पृष्ठ 267

39 पर्शियन वूमेन एण्ड हर वेज – पृष्ठ 957 सी कालिवर राइस

40 मध्यकालीन भारत भाग दो स हरिश्चन्द्र वर्मा पृष्ठ 574

द्वितीय अध्याय

नव जागरण काल – राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य

(क) स्त्री समाज मे शिक्षा का प्रसार

(ख) आधुनिक जीवन की जटिलताए

(ग) पाश्चात्य जीवन शैली का स्त्री–दशा पर प्रभाव एव नारी मे स्वाभिमान एव स्वावलम्बन का विकास

द्वितीय अध्याय

नव जागरण काल–राष्ट्रीय एव अन्तर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य

'20वी सदी तक आते–आते अग्रेजो के दमनकारी नीतियो के प्रति घृणा की भावना जोर पकडती गयी, और तत्कालीन भारतीय मनीषा यह सोचने के लिए विवश हो गयी, कि एक जाति का दूसरी जाति पर अन्याय करने का अधिकार क्यो है? फलस्वरूप सास्कृतिक एव सामाजिक जागरण की चेतना का उदय होता है, देशव्यापी सास्कृतिक आदोलनो का जन्म हुआ, जिसका मुख्य उद्देश्य भारतीयो को उनके वास्तविक स्वरूप से परिचित कराना था। कालान्तर मे नवजागरण की इस चेतना का राष्ट्रीय नवजागरण की चेतना मे विकास हुआ, और देश को स्वाधीन देखने की ललक जाग उठी । हमे यह स्वीकार करने मे सकोच नही होना चाहिए, कि भारतीय समाज की राजनीतिक और सामाजिक अवनति उसकी भीतरी दुर्बलता के कारण हुयी थी। एक जागरूक एव कर्मठ जाति से मुठभेड होने पर हमने अपनी आतरिक दुर्बलता को जब पहचाना, तो चेतना के अनेक द्वार खुले पडे । चेतनाशील महापुरूषो के नेतृत्व मे अनेक सामाजिक और सास्कृतिक आदोलन उठ खडे हुए अनेक सस्थाओ ने जन्म लिया, जिनका मूल उद्देश्य भारतीयो को सदियो की प्रगाढ तद्रा से जगाना था। इस प्रकार अग्रेजो के आगमन के पश्चात भारत मे नवजागरण का युग आरभ होता है।[1]

'वैदिक' काल मे नारी ब्रह्मवादिनी थी, 'उत्तर वैदिक' काल मे शास्त्रार्थ भी करती थी। परन्तु मध्यकालीन भारतीय समाज मे उसकी स्थिति सोचनीय हो गयी, जिसका स्पष्ट प्रमाण लार्ड विलियन

वेटिग की 1833 के रिपोर्ट मे देखा जा सकता है। जिसमे कहा गया कि 'अधिकाश हिन्दू परिवारो मे यह धारणा फैली हुयी थी कि यदि स्त्रियो को शिक्षा दिलायी गयी तो, इस धर्म विरूद्ध कार्य से वे विधवा हो जायेगी।" 2

इस प्रकार शिक्षा से वचित हो जाने पर भारतीय नारी की भूमिका केवल गृहकार्यों तक ही सीमित होकर रह गयी थी। उसकी सामाजिक एव राजनीतिक भूमिकाओ का तो प्रश्न ही नही उठता था। स्त्री–शिक्षा के अभाव ने सामाजिक कुरीतियॉ बाल–विवाह बालिकावध, विधवा दुर्दशा, पर्दाप्रथा आदि के रूप मे भारतीय समाज मे गहरी जडे जमा चुकी थी। ऐसी परिस्थितियो मे अग्रेजो के आगमन से, एक विस्फोटक प्रतिक्रिया हुयी जिसने रूढिग्रस्त समाज के विकृत मूल्यो को विस्थापित करके एक नव्य समाज की स्थापना का भरसक प्रयत्न किया। अग्रेजी भाषा के माध्यम से नवशिक्षित वर्ग मे अधविश्वासपूर्ण चिन्तन प्रणाली का स्थान तर्क ने ले लिया। नवीन धार्मिक सुधार आदोलनो द्वारा समाज की सकीर्णताओ के प्रति विरोधपूर्ण वृत्ति अपनाकर समाज सुधार का अथक प्रयास किया गया। नारी जीवन के मूल्यो मे आस्था, सामाजिक सास्कृतिक विरोधो के प्रति सघर्ष की भावना तथा आर्थिक एव सामाजिक अधिकारो के प्रति जागरूकता का प्रमुख श्रेय, भारतीय समाज पर पाश्चात्य प्रभाव को दिया जा सकता है। इसी प्रभाव के कारण भारतीय नारी की सामाजिक एव पारिवारिक स्थितियो मे उत्तरोत्तर अपेक्षित परिवर्तन होने लगे, जिसकी लहर सारे देश मे व्याप्त होती दिखायी देती है।

राष्ट्रीय परिपेक्ष्य

जब शोषण, उत्पीडन की हद से ज्यादा बढ जाता है, तो शोषितो के मध्य परस्पर समवेत चेतना उत्पन्न होती है। भारत की शोषित नारी के सदर्भ मे यह सत्य बहुत प्रखरता के साथ उद्घाटित होता है। इस परम्परा की शुरूआत बगाल मे 'राजा राम मोहन राय'

द्वारा सती प्रथा के विरूद्ध विद्रोह कर देने से हुयी ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने विधवा पुनर्विवाह को वैधानिक अधिकार दिलाने का प्रयास किया तथा बगाल के विभिन्न भागो मे स्त्री–शिक्षा के प्रसार के लिए अनेको बालिका विद्यालयो की स्थापना की। सामाजिक एव धार्मिक सुधारो की श्रृखला मे स्वामी दयानद सरस्वती का स्थान भी अत्यत महत्वपूर्ण है। जिन्होने पश्चिमी सस्कृति की चकाचौंध से प्रभावित हुए बिना भारत को सामाजिक पुनरुत्थान की दिशा दिखायी। इन्होने कहा कि[3] भारतीय सास्कृतिक एव सामाजिक जीवन को पुनर्जीवित करने के लिए स्त्री शिक्षा अनिवार्य है।"

दयानद की भॉति स्वामी विवेकानन्द भी स्त्री–शिक्षा के प्रबल समर्थक थे तथा यह मानते थे, कि बिना शिक्षा के प्रचार–प्रसार के किसी भी तरह का जागरण सम्भव नही। उन्होने धर्म को केन्द्र बनाकर स्त्री शिक्षा का क्षेत्र निर्धारित किया तथा तदयुगीन विडम्बनाओ का खण्डन करते हुए कहा – 'सर्वप्रथम स्त्री जाति को सुरक्षित बनाओ, फिर वे स्वय कहेगी, कि उन्हे किन सुधारो की आवश्यकता हैं।"[4] स्त्री सुधारो के क्रम मे 'महादेव गोविन्द रानाडे' को भी विस्मृत नही किया जा सकता, जिन्होने महाराष्ट्र मे "बाल–विवाह प्रतिबधक सभा" की स्थापना की।

सन् 1885 मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस की स्थापना तथा राष्ट्रीय आदोलन ने नारी जागरण को अभिनव प्रेरणा एव ऊर्जा दी। राष्ट्रीय आदोलन के प्रमुख नेता महात्मा गाधी ने स्वतत्रता आन्दोलन मे स्त्रियो से बढचढ कर भाग लेने का आह्वान किया, उनकी दृष्टि मे – "घरेलू गुलामी जगलीपन की निशानी" है।[5] राष्ट्रीय आदोलन मे स्त्रियो ने घर से बाहर जाकर विदेशी दुकानो पर धरना दिया, शराब की दुकानो पर अनशन किया तथा आन्दोलन चलाया।[6] 'अखिल भारतीय महिला परिषद' की स्थापना से उनकी सामाजिक तथा राजनीतिक स्थिति मे अपेक्षित सुधार हुए। 1921 मे महिलाओ को मताधिकार तथा 1926 मे विधान सभा की सदस्यता का अधिकार प्राप्त

हुआ।

उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम चरण तथा बीसवी शताब्दी के प्रारम्भिक काल मे सामाजिक कुप्रथाओ के अन्त और नारी जागृति के लिए देश के विभिन्न भागो मे सामाजिक सस्थाओ का अविर्भाव हुआ। इन सस्थाओ द्वारा पुरुषो के नारी के प्रति दृष्टिकोण तथा नारी के स्वय के प्रति दृष्टिकोण मे काफी परिवर्तन हुआ। स्त्रियो द्वारा अधिकार आन्दोलन की जो पहल राष्ट्रीय चेतना के प्रस्फुटन के साथ उन्नीसवी सदी के अतिम दशक मे हुई उसके अतर्गत पडिता रमाबाई, रमाबाई रानाडे आनदीवाई, स्वर्ण कुमार देवी आदि उच्च मध्य वर्ग की स्त्रियो ने अपने घरो मे पुरूष प्रधान समाज द्वारा थोपे गये बन्धनो को तोडकर उच्च शिक्षा के लिए विदेश गमन किया तथा स्त्रियो के आन्दोलन को एक नयी दिशा प्रदान किया।[7] 1886 मे स्वर्ण कुमारी ने 'लेडीज एसोसिएशन' की स्थापना की। पडिता रमाबाई ने 1892 मे स्त्रियो की शिक्षा एव रोजगार के लिए पूना मे 'शारदासदन खोला। पूना मे ही स्थापित 'भागिनी समाज भी स्त्री आन्दोलन का एक महत्वपूर्ण सगठन था। राष्ट्रीय आन्दोलन की नेत्री के रूप मे श्रीमती बनी बेसेट की भूमिका भी कम महत्वपूर्ण नही थी। मार्ग्रेट कजिन के साथ मिलकर इन्होने स्त्रियो का पहला अखिल भारतीय सगठन 'वूमेन्स इन्डिया एसोसिएशन'' स्थापित की, जिसका प्रमुख उद्देश्य स्त्री अधि ाकारो की मॉग तथा राष्ट्रीय आन्दोलन मे स्त्रियों की भागीदारी बढाना था। ''वूमेन्स इडिया एसोसिएशन ने देश भर के स्त्री सगठनो का एक बडा सम्मेलन आयोजित किया जिनमे से कई सगठनो ने मिलकर ''आल इडिया वूमेन्स कान्फ्रेस'' नामक एक अखिल भारतीय स्त्री सगठन स्थापति किया।

नारी आन्दोलन की सबसे महत्वपूर्ण पत्रिका ''स्त्रीदर्पण'' का सम्पादन रामेश्वरी नेहरू ने किया जिसमे तत्कालीन वामपथी विचारकों – सत्यभक्त, राधा मोहन गोकुलजी, रमाशकर अवस्थी, आदि के साथ हिन्दी की पहली प्रखर नारीवादी विचारक उमानेहरू, हृदयमोहिनी,

हुक्मादेवी सत्यवती और सौभाग्यवती आदि लेखिकाओ की रचनाए प्रकाशित होती थी। इन लेखिकाओ ने अपने लेखो और कहानियो द्वारा पर्दा प्रथा बालविवाह विधवा विवाह तथा स्त्री के सामाजिक एव राजनीतिक अधिकारो को भी मुद्दा बनाया।

नारी चेतना के स्वर स्त्री दर्पण' के अतिरिक्त ग्रह लक्ष्मी महिला सर्वस्व' 'आर्यमहिला आदि की पत्रिकाओ के माध्यम से भी प्रकट हुआ। 1922 मे चॉद का प्रकाशन स्त्री चेतना के साथ ही उसके राजनीतिक सामाजिक सरोकारो के विकास का भी प्रभाव था।

स्त्री–शिक्षा का मुद्दा नारी आन्दोलनो मे सबसे प्रमुख था। बदलते हुए सामाजिक एव सास्कृतिक सन्दर्भ मे शिक्षित पुरूष एव अशिक्षित स्त्री के बीच की खाई ने सामाजिक एव पारिवारिक दाम्पत्य ढॉचे मे सकट खडा कर दिया। राष्ट्रीय आन्दोलन ने भी स्त्री–शिक्षा का सवाल उठाकर बाल विवाह एव पर्दा प्रथा का विरोध किया क्योकि दोनो प्रथाए स्त्री–शिक्षा की राह मे रूकावट थी। उस समय के स्त्री आन्दोलनो ने इस तथ्य को समझा और उसने स्त्री–शिक्षा के सवाल को स्त्री मुक्ति के सवाल के साथ जोड दिया हृदय मोहिनी' ने स्त्री शिक्षा के विरोधी पुरूषो को ललकार कर कहा– "स्वार्थी पुरूषो! तुमने हमको कुछ उच्च कार्य करने का अवसर नहीं दिया। बहुत धोखा दिया। किन्तु अब तुम्हारी दाल न गलेगी। हम केवल स्त्रियॉ ही नही है किन्तु भारतीय समाज की सदस्य और नागरिक भी हैं।" [8]

स्त्री–शिक्षा के प्रसार मे इलाहाबाद के "क्रास्थवेट गर्ल्स हाई स्कूल" का महत्वपूर्ण योगदान था। यह स्कूल अपने वक्त के राष्ट्रवादी मध्यमवर्गीय स्त्री आन्दोलन का एक हिस्सा था। हिन्दी की महान कवयित्री महादेवी वर्मा उस समय इस स्कूल की विद्यार्थी थीं। इसी स्कूल मे पढते हुए उन्होने "भारतीय नारी" नामक एक नाटक लिखा जो स्कूल मे खेला गया। स्कूल पास करने के बाद महादेवी ने बचपन मे हुए विवाह को हमेशा के लिए ठुकरा दिया। यह घटना

दाम्पत्य जीवन की दृष्टि से युगान्तकारी थी।

प्रथम विश्व युद्ध के दौर मे तेजी से उभरे स्त्री आदोलन के तीन प्रमुख आधार थे – एक आधार इतिहास और पुराण था। नारी की स्वतत्रता के पक्ष मे हिन्दू पुराणो और इतिहास से सर्मथन जुटाते हुए रगून की महिला समिति मे रामेश्वरी नेहरू ने भाषण दिया।[9] 'सीता सावित्री, दमयन्ती शकुन्तला पर्दे मे रहने वाली स्त्रिया नही थी।" रणभूमि पर देश के लिए जान देने वाली राजपूत स्त्रिया भी पर्दे मे रहने वाली स्त्रिया नही थी। ज्यादातर स्त्रिया अपने आदोलन मे ऐसे तर्क जुटाती रही।

स्त्री आदोलन के समर्थक का दूसरा आधार यूरोप का स्त्री आदोलन था। समाज तथा परिवार मे स्त्रियो की भूमिका पर चलने वाली अन्तहीन बहस का निपटारा विश्वयुद्ध मे स्त्रियो द्वारा निभायी गयी भूमिका ने कर दिया। तत्पश्चात इग्लैण्ड की सरकार को स्त्री आदोलन की मागो के आगे झुकना पडा। उमा नेहरू ने अपने लेखो मे विश्वयुद्ध के दौरान यूरोपीय समाज मे विद्यमान सामाजिक नैतिक प्रश्नो के सन्दर्भ मे स्त्रियो की बदलती हुयी स्थिति की तरफ ध्यान आकर्षित किया।

स्त्री आन्दोलन के समर्थन का तीसरा आधार भारत का स्वाधीनता सग्राम था। स्त्री आन्दोलन की लहर को राष्ट्रीय आन्दोलन ने ही सबसे ज्यादा बढाया। इसमे सवाल उठाया गया कि जब स्त्री हर दृष्टि से पुरुष के समान है तो बिना उसकी भागेदारी के सच्चा स्वराज्य कैसे सम्भव हो सकता है। राष्ट्रीय आन्दोलन मे शामिल वामपथी विचारधारा के लोगो ने स्त्रियो के मत देने के अधिकार का खुला समर्थन किया। स्त्री आन्दोलन मे शामिल मध्य और उच्च वर्ग की वैसी सभी स्त्रियॉ जो पश्चिमी विचारो के सीधे सम्पर्क मे नही थी—भारतीय स्त्रियो द्वारा अपने आचार–विचार मे पाश्चात्य शैली अपनाने की घोर विरोधी थी। उमा नेहरू ने तर्क दिया कि यूरोप मे नारी की स्थिति मे आए परिवर्तन यूरोपीय समाज के आर्थिक और

राजनीतिक नियमो की उपज हैं। उन्ही आर्थिक राजनीतिक नियमो पर चलकर भारत खुद को सगठित करना चाहता है परन्तु यह नामुमकिन है। उमा नेहरू ने इस पर व्यग्यपूर्ण टिप्पणी की[10] सीता और सावित्री बनाने के लिए रामचन्द्र भरत और कृष्ण की आवश्यकता होती है। कोट पतलून और नेक टाई कालर शरीर पर और पश्चिमी आर्थिक आदर्शों की तरगे दिल पर लेकर ऐसी स्त्री जाति को उत्पन्न करने की अभिलाषा आकाश पुष्प ढूढने के समान है। '

20वी सदी के प्रारभ मे अनेक राष्ट्रीय एव सास्कृतिक आदोलनो के कारण नारी चेतना जागृत होती हुयी दिखायी देती है। परिमाण की दृष्टि से कम ही सही किन्तु अकुर फूटने लगे थे।

अन्तर्राष्ट्रीय परिपेक्ष्य

नारी जाति के समग्र विकास एव उनकी समस्याओ के समाधान के लिए समाज के एक बडे वर्ग का ध्यान आकर्षित करने मे बीसवी सदी के प्रारम्भिक वर्षों का अत्यधिक महत्व रहा हैं यही कारण हे कि इस सदी को ''महिला जागरण का युग' कहा जाता है। महिला उत्थान एव विकास के विभिन्न कार्यक्रमो एव योजनाओ के क्रियान्वयन की एक निश्चित रूप रेखा इस सदी मे तैयार की गयी। राष्ट्रीय एव अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओ के समाधान मे नारियो की सहभागिता बढाने के लिए 1975 के वर्ष को 'अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष' तथा महिला विकास की विशेष कार्यक्रमो के लिए 1985 के दशक को ''अन्तर्राष्ट्रीय महिला दशक'' के रूप मे मनाया गया। नारी मुक्ति आन्दोलन की चर्चा विश्व भर की प्रबुद्ध महिलाओ के वाद--विवाद के केन्द्र मे रही। परन्तु पश्चिम एव भारत की स्थितियो मे मूलभूत असमानता होने के कारण दोनो समाजो की समस्याए भी अलग थी।

पश्चिम की नारी भी प्राचीन काल से ही शोषण के दमन चक्र से मुक्त नहीं रही है। वह प्रेयसी और पत्नी पहले थी, मॉ बाद मे। वह माँ के रूप में भी पूज्य नही थी। पुरूष जाति को आकर्षित

करने के लिए उसे अपने शरीर पर अत्याचार करके भी उसे सजाना सॅवारना पडता था। देह–साधना और देह–भोग के अतिरेक के फलस्वरूप उत्पन्न सामाजिक विकृतियो के प्रति समाज मे विद्रोह हुआ तथा नारी के स्वतत्र अस्तित्व की मान्यता ने नारी मुक्ति–आन्दोलन को जन्म दिया। "बेट्टीफ्रइडन" ने अपनी पुस्तक द फेमिनिन मिस्टिक' या 'नारी की रहस्य कथा मे अपने व्यापक अध्ययन द्वारा सैकडो तथ्य जुटा कर यह सिद्ध कर दिया कि पुरुष प्रधान समाज ने मनोवैज्ञानिक दबाव डालकर स्त्रियो को वासनापूर्ति का साधन बनने—मॉ गृहणी और रमणी की भूमिकाऍ ही स्वीकार करने के लिए विवश किया है इसी से स्त्रियो की मौलिक प्रतिभा कुठित हुयी है तथा समाज मे उच्श्रृखलता बढी है, तथा इसका प्रभाव उनके दाम्पत्य जीवन पर भी हुआ।

'बेट्टी फ्राइडन' की इस पुस्तक ने पश्चिम मे नारी मुक्ति आदोलन को जन्म दिया, तथा 1966 मे उन्होने "नेशनल आर्गनाइजेशन आफ वीमेन" नामक एक सगठन की स्थापना किया। 'नाउ' के साथ अनेक अन्य महिला सगठन भी आगे आये।[11] 26 अगस्त 1970 को अमरीकी महिलाओ को मताधिकार मिलने की पचासवी वर्ष गाठ पर अमेरिका के विभिन्न शहरो मे व्यापक प्रदर्शन हुए। कहा जाता है, कि उस दिन न्यूयार्क, फिलाडेल्फिया, वाशिगटन तथा वोस्टन आदि की सडको पर स्त्रियो के जुलूसो का नजारा देखने लायक था। विवाहित–अविवाहित बच्चोवाली, बिना–बच्चोवाली, तरह–तरह की पोशाको एव केश सज्जा से सजी अवयस्क से लेकर वृद्धावस्था तक की हजारो महिलाए नारे लगा रही थी।[12] 'हमे आजाद करो हमे पुरुषो के बराबर अधिकार दो हमारे साथ द्वितीय श्रेणी के नागरिको का व्यवहार बन्द करो हमारे साथ द्वितीय श्रेणी के नागरिको का व्यवहार बन्द करो पुरूषो के बराबर नौकरियॉ और समान काम के लिए समान वेतन दो मॉ बनने या न बनने की, गर्भ–रखने या गर्भपात कराने की हमे स्वतत्रता होनी चाहिए

सडको से ऐसे नाम हटा दो जिसमे केवल पुरूषो के ही साहस के चर्चे हो इतिहास से ऐसे नाम मिटा दो, जिसमे केवल पुरूषो का ही बोलबाला हो लैंगिक भेद भाव बन्द करो" आदि। इसके साथ ही महिलाओ ने प्रसाधन सामग्री एव अपने भीतरी अगवस्त्रो की होलिया जलायी।

अपने प्रारम्भिक वर्षों मे यह आन्दोलन बुनियादी मानवीय अधिकारो को लेकर चला था और इसमे विचारोत्तेजक मुद्दे उठाये गये थे, लेकिन बाद मे इसका मुख्य जोर पुरुष समाज के विरोध पर केन्द्रित हो गया, जो इसके लिए काफी घातक सिद्ध हुआ। आन्दोलन मे इस उग्रवाद का कारण मुख्य रूप से बाद मे आने वाली दो पुस्तके थी – 'केट मिलेट' की सेक्सुअल पॉलिटिक्स"[13] तथा 'जर्मन ग्रीअर' की "फीमेलयुनक"। केट मिलेट ने पुरूष प्रधान समाज के उग्र विरोध के साथ यौन क्राति का आह्वान किया, और 'फ्री सेक्स' तथा लेस्बियन का समर्थन किया। जर्मन ग्रीअर' का मूल उद्देश्य कोई सुधारवादी आन्दोलन न चलाकर कान्तिकारी विचारो का प्रसार था।

इन पुस्तको से सारे अमरीका में खलबली मचा दी, तथा नारी मुक्ति आदोलन को उग्र मोर्चे मे बदल दिया। इसी आदोलन के जोश मे स्त्रियो ने 'केट–मिलेट' को माओत्सेतुग" कहा तो पुरूषे ने उसे "पुरूषो को बधिया करने वाली स्त्री" की सज्ञा दी।

स्त्रियो के सामाजिक पारिवारिक आर्थिक और राजनीतिक स्थिति को ससार के सामने लाने के लिए पुर्तगाल की तीन लेखिकाओ ने 1972 मे "न्यू पोर्टगीज लैटर्र" नामक एक पुस्तक लिखी। पुस्तक को सरकार द्वारा गैर कानूनी घोषित करके लेखिकाओ पर मुकदमा चलाया गया। इसी प्रकार की एक अन्य पुस्तक 'ली हालकोम्ब' की "विक्टोरियन लेडीज एण्ड वर्क" ने फ्रासीसी क्राति के बाद स्त्रियों मे जगी चेतना पर विस्तृत प्रकाश डालते हुए, इस धारणा को प्रस्तुत किया कि स्त्रियों की जागृति से ही उन्नीसवीं शताब्दी का उदारवाद प्रारम्भ हुआ।

यूरोप और भारतीय नारी आन्दोलन का तुलनात्मक अध्ययन करने पर यह बात साफ हो जाती है कि भारतीय और पाश्चात्य नारियो के अधिकार प्राप्ति का इतिहास भिन्न है। भारतीय सित्रयो ने कभी किसी युग मे भी पुरूषो के विरूद्ध खडे होकर अधिकारो की लडाई नही लडी। यहाँ नारी मुक्ति का आन्दोलन एकाकी नही था उसमे पुरुषो की भी सहभागिता बराबर रही। जहाँ यूरोप मे नारी मताधिकार प्राप्त करने मे 1832 से 1818 तक का समय लगा वही भारत मे इसके किए केवल पॉच साल का समय लगा, वह भी विदेशी हुकूमत के कारण। इसलिए कि यहाँ महिला मताधिकार की मॉग का पुरुषो की ओर से विरोध न करके उसे समर्थन प्रदान किया गया। स्त्री मुक्ति आन्दोलन के बारे मे भी कमोवेश यही फार्मूला लागू होता है। भारत मे स्वाधीनता आन्दोलन के समान्तर ही नारी मुक्ति आन्दोलन भी चलता रहा जबकि, पश्चिमी देशो मे इसका एक लम्बा इतिहास है।

स्त्री समाज में शिक्षा का प्रसार

मध्यकालीन समाज मे नारी की स्थिति अत्यत सोचनीय हो जाने का प्रमुख कारण उनमे शिक्षा का अभाव था। वस्तुत शिक्षा द्वारा मानव मे आत्मबोध तथा आत्मसजगता की भावना जागृत होती है। नारी शिक्षा की जिस क्रमिक गति से अवहेलना की गयी, उसी क्रमिक गति से नारी की पारिवारिक स्थिति मे उसका अध पतन होता चला गया। अग्रेजो के आगमन से पूर्व स्त्रियो के साक्षर होने के जो भी साधन सुलभ थे, वे केवल बहुत ऊचे दर्जे के राजाओ – महाराजाओ, नवाबो तथा जमीदारो की हवेलियो के हवाले थे। सामान्य स्त्रियो के साक्षर होने का कोई साधन उपलब्ध न होने के कारण उनका सबसे प्रशसित रूप गृहकार्य निपुणता ही माना जाता था। बदलते हुए सामाजिक सास्कृतिक सन्दर्भ मे शिक्षित पुरूष और अशिक्षित स्त्री के बीच की खाई ने सामाजिक और पारिवारिक ढॉचे मे

सकट पैदा कर दिया। इस सकट के समाधान के लिए स्त्री शिक्षा की आवश्यकता बडी शिद्दत से महसूस की जाने लगी।

भारत मे स्त्री–शिक्षा की ओर सर्वप्रथम डेनिस जर्मन और बेल्जियम मिशनरियो का ध्यान आकर्षित हुआ। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर एव डिक्वाटर बेयून [14] ने स्त्री शिक्षा की आवश्यकता महसूस करते हुए 1749 मे कलकत्ता मे पहला विद्यालय खोला। आर्य समाज प्रार्थना समाज, राम कृष्ण मिशन तथा अन्य समाज सुधारक सस्थाओ ने भी स्त्री–शिक्षा प्रसार के लिए महत्वपूर्ण कार्य किये। परन्तु स्त्री–शिक्षा का प्रारम्भिक इतिहास विरोध की कडी छाया मे पल्लवित हुआ। इसकी एक झलक 1835 मे तत्कालीन समाज की शैक्षणिक स्थिति के अध्ययन के लिए नियुक्त लार्ड विलियन वेटिग की रिपोर्ट से देखा जा सकता है जिसमे कहा गया कि – 'अधिकाश हिन्दू परिवारो मे यह धारणा फैली हुई है कि यदि लडकियो को शिक्षा दिलायी जाएगी तो धर्म विरूद्ध इस कार्य से वे विधवा हो जाएगी।" [15] इसके पश्चात भी कुछ जागरूक व्यक्तियो को कन्याओ को छोटी आयु मे ही स्कूल भेजन मे कोई आपत्ति नही थी। पाश्चात्य शिक्षा से प्रभावित कुलीन वर्ग की कन्याओं ने तो विदेश यात्राए भी की। वस्तुत स्त्री शिक्षा के प्रसार मे सबसे बडी बाधा तत्कालीन पाठ्यक्रम था, जिनको दृष्टि मे रखकर अग्रेजो ने स्कूलो की स्थापना की। समाज मे एक ऐसा समुदाय भी था जो स्त्री शिक्षा की आवश्यकता को समझता था लेकिन पाठ्यक्रम भारतीय नारी के आदर्श सीता और सावित्री के अनुरूप ही चाहता था। नारी जीवन मे शिक्षा का मूल्याकन पारिवारिक तथा सामाजिक सदर्भ मे सुख एव शान्ति के लिए किया गया। आर्थिक विषमता समाप्त करने मे सहायक के रूप मे शिक्षा की अनिवार्यता को साधन बनाने की भावना का विकास बहुत बाद मे हुआ। स्त्री–शिक्षा का मुद्दा नारी आन्दोलन का सबसे प्रधानमुद्दा था। बदलते हुए सामाजिक सदर्भ मे शिक्षित पुरुष और अशिक्षित स्त्री के बीच की खाई ने सामाजिक और पारिवारिक ढॉचे मे सकट खडा कर

दिया जिसके परिणाम स्वरूप आने वाला हर परिवर्तन पुरूषो को सहज और स्वाभाविक रूप से प्रभावित कर लेता था पर पुरूष स्वय हिमालय पर्वत बनकर परिवर्तन की इन हवाओ से अपने घर की महिलाओ को बचाने का प्रयास करते। शिक्षित पुरूषो का अशिक्षित स्त्रियो के साथ निर्वाह कठिन हो जाता था परिणाम स्वरूप अशिक्षित स्त्रियो का तिरस्कार, अपमान पूर्ण व्यवहार स्त्री जीवन का एक और अध्याय बनकर रह गया था।

राष्ट्रीय आन्दोलन मे स्त्री–शिक्षा का प्रश्न एक बडे मुद्दे के रूप मे उठ खडा हुआ। अपने ऊपर होने वाले अत्याचार और अपमान का कारण स्त्रियो ने शिक्षा की कमी माना। बाल विवाह' और 'पर्दा प्रथा', 'स्त्री–शिक्षा' की राह मे रूकावट थी, तथा शिक्षा से वचित हो जाने पर स्त्रियो के सामाजिक तथा राजनीतिक भूमिकाओ का तो प्रश्न ही नही था। 1929 मे 'शारदा ऐक्ट के पास हो जाने पर, स्त्री शिक्षा का महत्व और बढा। पारिवारिक अत्याचारो से मुक्ति पाने तथा परिस्थितियो मे सुधार के लिए स्त्री तथा सामान्य जनता मे शिक्षा के प्रसार को महत्वपूर्ण समझा गया। इसके पश्चात प्रश्न यह उठा, कि स्त्रियो की शिक्षा का विषय क्या हो? इस तथ्य को स्त्री आन्दोलन ने समझा तथा स्त्री–शिक्षा के सवाल को स्त्री मुक्ति आन्दोलन के साथ जोड दिया।[16]

स्वतत्रता पूर्व तक भारत मे स्त्री शिक्षा 4 प्रतिशत थी, तथा स्वतत्र भारत का सविधान लागू होने के पश्चात 1952 मे यह प्रतिशत 8 तक ही पहुँचा। सन 1971 मे 18 7 तथा सन 1981 तक 24 88। ध्यातव्य है कि, यह दर साक्षरता की है, पर्याप्त शिक्षा की नही। भरत सरकार की अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के अनुसार महिलाओ के स्तर मे बुनियादी बदलाव लाने के उद्देश्य से शिक्षा का प्रयोग, एक औजार के रूप मे किया गया।[17] जिसके फलस्वरूप महिलाओ के शिक्षा स्तर मे काफी सुधार हुआ। 1997 मे भारत की लगभग आधी महिलाए शिक्षित हो चुकी थीं। इससे यह अनुमान

लगाया जा सकता है कि स्त्रियॉ अपने अधिकारो और कर्तव्यो के प्रति क्रमश जागरूक हो रही हैं, तथा इस जागरूकता के परिणाम स्वरूप सामाजिक रूप से अलाभान्वित (अनुसूचित जाति एव जनजाति) अन्य वर्गों के फासले कम हुए हैं। लेकिन इन प्रयत्नो के बावजूद इस देश की आधी महिलाए निरक्षर है। 1997 के सर्वेक्षण के अनुसार देश मे केरल और मिजोरम को ही पूर्ण साक्षर होने का कागजी गौरव प्राप्त हैं। कम्प्यूटरी करण के लिए विख्यात चन्द्रबाबू नायडू के राज्य (आन्ध्र प्रदेश) मे सिर्फ 43% महिलाए ही पढना लिखना जानती हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर महिला साक्षरता का अध्ययन करे तो भारतीय स्त्रियो के शैक्षणिक पिछडेपन का सहज ही आकलन हो जाता है। मानव विकास रिपोर्ट 2000 के अनुसार–भारत मे महिला साक्षरता विश्व मानचित्र पर सबसे पिछडे देश के रूप मे गिने जाने वाले जाम्बियॉ युगाडा, नाइजीरिया, सूडान आदि से भी कम है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि समस्त उपलब्धियो एव स्त्री शिक्षा के विकास की अनगिनत योजनाओ के बावजूद नारी समाज की उन्नति का अपेक्षित स्तर अभी भी प्राप्त नही किया जा सका हैं। वस्तुत स्त्री–शिक्षा का स्तर पुरूषो की तुलना मे उच्च से उच्चतर क्यो न हो जाय लेकिन जब तक समाज की मानसिकता मे परिवर्तन नहीं आएगा तब तक इस आधी जनसख्या का भला होने वाला नहीं है। अपने दाम्पत्य एव गृहस्थ जीवन को सुखी देखने के लिए चाहे नौकरियो मे आज भी उसकी यह कार्यकारी भूमिका गौण है तथा मॉ एव गृहणी की भूमिका अनिवार्य मानी गयी है। यद्यपि स्त्रियो ने इन भूमिकाओ पर कोई आपत्ति नही, की परन्तु दूसरी भूमिका को गौण मान लेने पर उनमे क्षोभ अवश्य व्याप्त हुआ। आज भी अधिकाश गॉव ऐसे हैं जहॉ स्त्री–शिक्षा के नाम पर सारी प्राथमिकताऍ माता–पिता पर ही डाल दी जाती हैं। वहॉ पर लडकियो का हाईस्कूल अथवा इण्टर से आगे शिक्षा प्राप्त करना उचित नहीं समझा जाता। इस स्थिति के लिए एक सीमा तक स्त्री ही जिम्मेदार है। इसको अपनी लडाई खुद

लडनी होगी तभी इस व्यवस्था मे परिवर्तन लाया जा सकेगा।

आधुनिक जीवन की जटिलताए

राजनीतिक स्थितियो के उथल पुथल तथा समाजवादी आन्दोलनो के सुधारवादी प्रयत्न के पश्चात, देश की सास्कृतिक चेतना मे एक व्यापक बदलाव देखने को मिला तथा जो नारी घर के भीतर बिना किसी मुआवजे के अहर्निश श्रम करने के लिए अभिशप्त थी, शिक्षा तथा अधिकारो से वचित करके उसे अपने बजाय दूसरे का ख्याल रखने के लिए निरतर प्रेरित किया जाता था – उसकी भूमिका मे भी पर्याप्त बदलाव आया। आधुनिकता के ससर्ग से महिलाओ के आन्दोलन ने हजारो साल से चली आ रही, इन स्त्री विषयक धारणाओ पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया।

आधुनिक नारी ने अपनी इसी बदली हुई सामाजिक भूमिका के कारण प्रतिष्ठा प्राप्त की, जिसके साथ–साथ उसको बदनामी भी सहनी पडी। आज नारी जीवन की अनेक घटाए देखने को मिलती है – एक ओर विकासमय जीवन जीने वाली आधुनिकताए है, तो दूसरी ओर परम्परागत त जीवन जीने वाली मध्यवर्गीय महिलाओ की भी कमी नही है। प्रकृति ने नर नारी की सरचना मे शारीरिक, स्वभावगत तथा भावानात्मक स्तर पर अन्तर अवश्य किया है, किन्तु इसका अर्थ यह कदापि नही कि, नारी को दीन–हीन समझा जाय। जीवन के अनेक क्षेत्रो मे नारी की अभिरूचि पुरूषो से श्रेष्ठ है। "एरिपाना स्टेसीनोपोल्स" ने अपनी पुस्तक "द फीमेल वूमेन" मे बताया है कि वाक्पटुता लेखन, भाषा प्रयोग, उच्चारण, सूक्ष्मदृष्टि स्मृति तथा कला रूचि मे स्त्रियॉ पुरूषो की अपेक्षा प्राय श्रेष्ठ होती है।[18]

नारी पुरूष का भेद आर्थिक क्षेत्र मे, ज्ञानार्जन के क्षेत्र मे, फैशन के क्षेत्र मे लगभग समाप्त प्राय सा हो गया है। शिक्षा तथा धनार्जन के क्षेत्र मे भी वह पुरूष से पीछे नही है। देश के विभिन्न उच्चतर तथा महत्वपूर्ण पदो पर आसीन है। इतना सब नारी ने

सदियो के सघर्ष और अथक प्रयत्न से प्राप्त किया है यदि उसने सघर्ष न किया होता तो पुरूष प्रधान समाज मे स्त्री विषयक सामाजिक धारणाओ, पूर्वाग्रहो तथा परिकल्पनाओ मे कोई विशेष बदलाव नजर नही आता। स्त्री परिवार मे सारी जिम्मेदारियॉ निभाने के बावजूद पराश्रित बनी रहे तथा मूक भाव से परिवार के सभी सदस्यो की आवश्यकताओ तथा आकाक्षाओ का ध्यान रखे—यही समाज तथा परिवार चाहता है। सयुक्त परिवार से अलग रहने वाले मध्य वर्गीय व्यक्तियो मे यह उदारता आयी है कि, वे पत्नी को बाहर काम करने की इजाजत दे लेकिन परिमाण और परिणाम दोनो पहलुओ से यह स्थिति पूरी तरह सन्तोष जनक नहीं है। नारी दोहरे उत्तरदायित्वो को निभा रही है—वह गृहणी, पत्नी, मॉ होने के साथ—साथ उपार्जिका भी है, परन्तु क्या इससे उसको वह सम्मान प्राप्त हो रहा है, जिसकी वह हकदार है? क्या आज पुरुष दृष्टि नारी के प्रति परिवर्तित हो चुकी है? इन प्रश्नो के उत्तर मे हमे दूर—दूर तक नि शब्द सन्नाटा ही सुनाई पडता है।

पुरूष प्रधान समाज मे नारी चाहे कितनी ही योग्य एव पुरूष की सहायक क्यो न हो, वह उसको अपने बराबर का दर्जा देना नही चाहता। इसमे उसका अह हमेशा आडे आता है, तथा मन से स्वीकारते हुए भी वह यह प्रकट नही कर सकता कि, उसकी त्याग एव योग्यता सराहनीय है। कामकाजी नारी की स्थिति बडी ही विडम्बना पूर्ण है। बढती महगाई और जीवन की सामान्य आवश्यकताओ के कारण, वह नौकरी के साथ सद्गृहणी और पूर्णत आज्ञाकारी धर्मपत्नी न बन पाने के कारण, मानसिक क्षोभ से भी मुक्त नही रह पाती। घर का अशान्त वातावरण, एव अव्यवस्थित घर, नौकरियो के नखरे, एव समय पर न मिल पाने वाली बसो द्वारा उत्पन्न कष्ट, तथा इन सबके ऊपर परिवार के सदस्यो का मौन असहयोग और उपेक्षा दृष्टि, इन सबके बीच जीने वाली नारी का जीवन किसी दुधारी तलवार से कम नही। इन परिस्थितियो मे नारी का शारीरिक एव

मानसिक सतुलन स्थिर न सह पाना तथा क्षोभ अक्रोश एव चिडचिडा पन आना स्वाभाविक ही है।

नारी ने आर्थिक स्वतत्रता को अपने व्यक्तित्व एव अस्तित्व के लिए एक चुनौती समझ कर स्वीकार किया। इस दिशा मे नारी समाज मे शिक्षिका डाक्टर, पत्रकार अधिकारी, ऐयर होस्टेज से लेकर कैबरे डासर तक की भूमिका मे उतरी। आर्थिक पराधीनता नारी की सबसे विकट परिस्थिति होती है। आर्थिक परवशता के कारण समाज मे उसके अस्तित्व की कोई पहचान नहीं बन पाती। नारी प्रसव की पीडा सहे, शिशु पालन के कष्ट सहे लेकिन नाम होता है पिता का। समाज मे उसकी पहचान किसी की माँ किसी की पत्नी एव किसी की बेटी के रूप मे ही होती है। यदि स्त्री स्वतत्र रूप से स्वेच्छा से काम करती है तो भी पुरूष अह को अवश्य ही ठेस पहुचाती है, तथा यह अफवाह भी बडे जारे शोर से फैलायी जाती है कि, बाहर काम करने वाली स्त्री अपनी अस्मिता बचाकर नहीं रख सकती। अधिकाश पुरूषो मे यह धारणा होती है, कि जब स्त्री घर के बाहर निकली है, तो कुछ हद तक यौन सम्बन्धो की सीमाए तोड आयी होगी। सहकर्मियो से सम्बध तनावपूर्ण न हो, इसके लिए यदि स्त्री पुरूषो की कुहनियो और कधो को बर्दाश्त करने के लिए तैयार हो जाय तो, पुरूष समाज उसे नारी की मौन स्वीकृति मानने लगता है। इस सारी स्थिति से जूझती हुई नारी के लिए अतिरिक्त खतरा उसका पति भी बनने लगता है, जिसको कभी अपनी सेवा मे कमी से चिढ होती है तो कभी इस बात से कि उसकी पत्नी ने पर पुरूष को लात क्यो नही मारी। स्त्री यदि कोई पुरूष मित्र बना ले तो पति के साथ समाज की नजर मे भी यह सम्बन्ध खटकने लगता है, और यह सारी स्थितिया उसके दाम्पत्य जीवन मे विघटन उत्पन्न करती है।

स्त्री के घर से बाहर किसी भी प्रयोजन से निकलते ही समस्याओ का एक डरावना जगल पार करना पडता है चाहे वह पढाई के लिए निकले या रोजगार के लिए। जहाँ पुरूष एव स्त्री

दोनो कार्यरत है, वहॉ भी उसको बराबरी का हक प्राप्त नही है। यद्यपि वह अपने सारे उत्तरदायित्वो का निभाते हुए ही आगे बढती है फिर भी छोटी–छोटी बात पर पति द्वारा प्रताडित होना उसकी नियति है। नारी चाहे आई ए यस आई पी यस या अन्य किसी भी ऊचे पद पर हो सत्ता प्रतिष्ठान मे उसकी हैसियत दोयम दर्जे की ही होती है।[19] सरला ग्रेवाल किरणवेदी, कोकिला अय्यर जैसी महिलाएँ सत्ता प्रतिष्ठान के शिखर पर विराजमान है। लेकिन यह मोहक तस्वीर उस समय छिन्न–भिन्न हो जाती है जब पता चलता है, कि इस शोकेस के पीदे अफसर महिलाओ की एक ऐसी अदृष्य कतार खडी हुई है जिसके सिर्फ नारी होने के कारण कभी सफाई से तो कभी भौंडे रूप से हक छीने गये हैं। सरोजनी गजू ठाकुर[20] के द्वरा किए गये एक ताजा अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि, प्रशासन के ऊँचे हलको मे आज भी तकरीबन वही पुरूष वर्चस्व वाला दिमाग काम कर रहा है। सचिव पद से अवकाश ग्रहण करने वाली सरला गोपालन[21] ने लिखा है कि औरत अफसर को मर्द के मुकाबले अधिक मेहनत करके अपनी योग्यता सिद्ध करनी पडती है तब कही जाकर महत्वपूर्ण पदो पर नियुक्तियो के लिए उसके नाम पर विचार होता है।

पुरूष नारी के समर्थ रूप को आज भी अन्दर से स्वीकार नहीं कर पाया है। यह भी देखने में आता है कि वर्तमान साहित्य मे भी आधुनिकता के परिवेश से वेष्ठित करके नारी को मात्र विलासमयी ऑका गया है। वह समर्थ हुई शिक्षित हुई, पुरूष के बराबर की सहायक हुई दोहरे उत्तरदायित्वो की गरिमा भी उसने सहेजी फिर भी उसका प्राप्य क्या रहा? यही कारण है कि नारी अन्दर से टूटी है। इसी टूटन की प्रक्रिया स्वरूप वह कही अधिक उच्श्रृखल दिखाई देती है और कही अतिआधुनिक पुरूष उसके सहयोग को सराहने के बजाय सिर्फ उसका समर्पण चाहता है। वह यह नहीं सोचता कि यदि नारी न होती तो वह कितना अकेला, निरर्थक तथा असहाय दिखता।

पाश्चात्य जीवन शैली का भारतीय स्त्री-दशा पर प्रभाव—नारी मे स्वाभिमान एव स्वावलम्बन का विकास

सदियो के यातना और सघर्ष के बाद कहने को यह स्थिति अवश्य आ गयी है कि जीवन का कोई भी क्षेत्र किसी के लिए वर्जित नही रहा फिर भी वास्तविकता के धरातल पर नारी की प्रगति का सौन्दर्यशास्त्र काफी निराशा जनक है। नारी की दशा देखकर उनसे सहानुभूमि रखने वाले समाज सुधारको एव उदात्त चिन्तको – स्वामी दयानन्द सरस्वती ईश्वरचन्द्र विद्या सागर, विवेकानन्द महात्मागॉधी आदि के प्रयत्नो से नारी ने जो आत्मबल और साहस जुटाया उसके परिणाम स्वरूप तस्वीर काफी कुछ बदली है। अवसर और सुविधा प्राप्त होने पर नारी ने राजनीति और शासन जैसे जीवन क्षेत्रो मे भी पुरूषो के बराबर दक्षता, कुशलता एव सफलता का परिचय दिया है।

इस पुरूष सत्तात्मक समाज मे अपने व्यक्तित्व विकास की चेष्टा मे बढने वाली नारी पुरूष की जीवन सगिनी कम प्रतिद्वन्दिनी अधिक बनती जा रही है। स्पर्धा की यह प्रवृत्ति स्वाधीनता के पश्चात दिनो दिन बढती ही जा रही है। युग परिवर्तन के साथ नारी की स्थिति मे भी परिवर्तन आया है। वह सिर खोलकर समाज मे कही भी आ जा सकती है। पुरूषो के साथ दफ्तर मे काम कर सकती है अधिक समय तक अविवाहित रहते हुए अपने उद्देश्य मे सफलता प्राप्त करती है। यद्यपि इन समस्त उपलब्धियो के लिए उसे सामाजिक छीटाकशी तथा पति बनाम पुरूष के प्रतिरोध का कम सामना नही करना पडा है। फिर भी अब इस मोड से पीछे मुडना नारी समाज के लिए सम्भव नही रहा।

कुछ प्रबुद्ध एव उच्चवर्गीय महिलाए जो सामाकि आदोलनो मे भी सक्रिय रहती हे, फिर भी स्त्री आरक्षण को नापसद करती है, इससे स्त्रियां कमजोर होती हैं, और उनके बराबरी के आंदोलन को

धक्का लगा है। दफ्तरो मे भी कामकाजी महिलाए उन गुणो को अपनाती जा रही है जो पुरूषो की विशिष्टता समझे जाते है। अपने अधीनस्थो से काम के मामले मे वे पुरूष बास से भी ज्यादा कठोर एव आक्रामक प्रर्दशन करती है। आर्थिक आजादी प्राप्त हो जाने के बाद स्त्रियो ने पुरूषो को घर के मुखिया के पद से लगभग बेदखल कर दिया है। पुरूष भी जागरूक और अपने पैरो पर खडी पत्नी को छोटे परिवार के नये केन्द्र के रूप मे प्रस्तुत करता है। घर के लिए राशन से लेकर के स्कूल चुनने तक, रिश्तेदारो से सबध से लेकर कार एव घर खरीदने जैसे निर्णयो मे भी उसी की अहम् भूमिका दिखायी देती है।

उन्नीसवी सदी का पूँजीवाद आधुनिकता की सर्वाधिक शक्तिशाली अभिव्यक्ति बनकर उभरा तथा भूमडलीकरण ने महिलाओ के लिए रोजगार के नये अवसर उपलब्ध कराये, क्योकि उसको नारी श्रम की आवश्यकता थी। इसका परिणाम हुआ कि औरत को आजादी और हैसियत मिली। परन्तु कार्यस्थल पर उसकी कार्य दशाए बेहतर नही हुई और न ही उसे घर के काम काज से छुट्टी मिली।

इक्कीसवीं सदी की शुरूआत मे नारी मुक्ति आन्दोलन एक नये मोड पर खडा है जहॉ महिलाए अपनी स्थिति, अधिकारो और समस्याओ को लेकर अधिक मुखरित हुई हैं। अस्सी के दशक मे महिलाए स्वय को नारीवादी या नारी मुक्ति का पक्षधर कहने मे सकुचाती थी पर पिछले दस वर्षो मे यह तस्वीर कुछ बदली है। विश्वप्रसिद्ध नारीवादी बुद्धिजीवी और लेखिका "नाओमी वुल्फ ने अपनी पुस्तक "फायर विद फायर"[22] मे इस स्थिति को स्पष्ट किया है – "केवल सामाजिक तौर पर ही नही–राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्र मे भी स्त्रियो के वोट और पोस्ट (पद) के महत्व को अब मान्यता मिल रही है। राजनीतिक क्षेत्र मे अमरीकी ऑकडो के अनुसार बिल क्लिटन केवल इसलिए राष्ट्रपति का चुनाव जीते कि उनको महिलाओ का समर्थन प्राप्त था। कनाडा मे भी महिला प्रधानमत्री चुनी गयी।

आस्ट्रेलिया मे पाल कीटिग इसलिए चुनाव जीते कि उन्होने महिला समस्याओ के लिए एक महिला सलाहकार की नियुक्ति की।'

स्त्रियो के पुरूषो के समान शिक्षा एव प्रोत्साहन के साथ साथ पुरानी बाधाओ का टूटना और समानता के मूल्यो का आगमन भी एक बडा प्रोत्साहन है। यह जरूरी है कि स्त्री एक पूर्ण मनुष्य की तरह महसूस करे, अपनी छमता और सम्भावना का खुलकर विकास करे ताकि उसके व्याक्तित्व मे सुखद बदलाव देखने को मिले। स्त्री किसी कार्यक्षेत्र मे जाये या न जाये, परन्तु बाधाओ के न होने पर स्त्री सहज सामाजिक प्राणी के रूप मे कही ज्यादा सकारात्मक और प्रभावी भूमिका निभा सकेगी।

[23] यूरोप मे कोई ऐसा देश नही है, जहॉ सबसे सक्षम पुरूष अक्सर चतुर और अनुभवी स्त्रियो की सलाह न लेते रहे हो, और अपने व्यक्तित्व और सार्वजनिक जीवन मे उनके विचारो और उनकी मदद को बहुत मूल्यवान न मानते रहे हो। पिछले दस वर्षों मे दुनिया भर की महिलाओ के व्यवहार, परिस्थिति, एव उपलब्धियो मे जो महत्वपूर्ण परिवर्तन आया है, क्या वह किसी ठोस बदलाव का सूचक है ? नाओमी [24] के शब्दो मे –''क्या महिलाये अपनी उपलब्धियो को समाहित कर और दृढ करेगी? हम एक महान जागृति और बिजली जेसी तेज जानकारी के दौर मे प्रवेश कर चुके हैं, जहॉ सार्वजनिक जीवन के उजाले मे स्त्रियो की समझ व बोध ने पुरूष के बोध के साथ जगह लेना शुरू कर दिया है। मगर जहॉ नयी स्त्री–शक्ति एक निर्बाध प्रवाह जैसी महसूस होती है, वहीं हम इनके वेग पर भरोसा नही कर सकते। इनकी निरतर प्रगति का दारोमदार हमी पर है।

1970 के बाद औरत का सबलीकरण बढा, आन्दोलन बढे। 60 के आस–पास की जन–सस्कृति बदल गयी, क्योकि ऐसी औरत सामने आने लगी जो 'स्वय' हो सकती थी। इसमे खतरा तो था लेकिन जब औरत अपने बारे मे राजनीतिक विमर्श करने लगी तो इस सस्कृति ने उसका स्वरूप बदलना शुरू किया। उक्त अध्ययन मे देखा

गया है कि भारतीय स्त्री के सघर्ष का इतिहास बहुत जटिल किन्तु रोचक है। 20वी सदी के अतिम दशक तक उसने अपने समाज तथा परिवार मे अपने लिए जो जगह बनायी, और आज वह जिस स्थिति मे है उससे उसका दाम्पत्य – जीवन किस प्रकार प्रभावित हुआ और हो रहा है। वर्तमान कथाकारो के साहित्य मे भारतीय नारी के दाम्पत्य जीवन की अभिव्यक्ति किन–किन रूपो मे हुयी है, का विवेचन अग्रिम अध्यायो मे हुआ है।

पाद–टिप्पणी

1 डॉ निर्मला अग्रवाल – खडी बोली काव्य–ऐतिहासिक सदर्भ और मूल्याकन पृष्ठ 78

2 आशारानी व्होरा – नारी शोषण आइने एव आयाम – पृष्ठ 19 द्वितीय सस्रकण 1994

3 विवेकानद हिन्दी कहानी मे नारी की सामिजक भूमिका , डॉ अनिल गोयल – प्रथम सस्करण – 1985 पृष्ठ 19

4 विवेकानन्द, भारतीय नारी' पृष्ठ 25

5 गॉधीजी – "स्त्रियॉ और उनकी समस्याऍ पृष्ठ 30

6 गॉधीजी – "स्त्रियॉ और उनकी समस्याऍ

7 वीर भारत तलवार – राष्ट्रीय नवजागरण और साहित्य, 1993, पृष्ठ 138

8 वीर भारत तलवार – राष्ट्रीय नवजागरण और साहित्य, पृष्ठ 123

9 वीर भारत तलवार – राष्ट्रीय नवजागरण और साहित्य

10 राष्ट्रीय नवजागरण और साहित्य – वीर भारत तलवार

11 आशारानी व्होरा – नारी शोषण आइने और आयाम पृष्ठ 242

12 आशारानी व्होरा – नारी शोषण आइने और आयाम

13 आशारानी व्होरा – नारी शोषण आइने और आयाम

14 अवर वूमेन – स्वामी विवेकानन्द, पृष्ठ 25–26

15 नारी शोषण आइने और आयाम – आशारानी व्होरा

16 नारी शोषण आइने और आयाम – आशारानी व्होरा पृष्ठ 19

17 हस मार्च 2001 पृष्ठ 203 लेखक अलका आर्य लेख – औरत की जगह।

18 हिन्दी कथा साहित्य मे कार्यशील नारी – डा ज्ञान अस्थाना पृष्ठ स 5

19 हस मार्च 2001 लेख – पितृसत्ता के नये स्वाध्याय पृष्ठ 37 लेखक – अभय कुमार दूबे

20 हस – मार्च, 2001 पृष्ठ 37 अभय कुमार दुबे

21 वही – पृष्ठ 37 लेख पितृसत्ता के नये रूप

22 हस – मार्च 2001 पृष्ठ 72। लेख – इक्कीसवी सदी का नारीवाद लेखिका – प्रगति सक्सेना।

23 वागर्थ – फरवरी 2002 पृष्ठ 105 लेख – एक सहज, स्वतत्र स्त्री का जन्म। लेखक–जॉन स्टुअर्ट मिल – रूपातर युगाक धीर

24 हस मार्च 2001 पृष्ठ 77 लेख – इक्कीसवी सदी का नारीवाद। लेखिका – प्रगति सक्सेना

तृतीय अध्याय

हिन्दी कहानी साहित्य

(क) प्रेमचन्द पूर्व कहानी का स्वरूप एव दाम्पत्य जीवन

(ख) प्रेमचन्द युग मे कहानी का स्वरूप एव दाम्पत्य जीवन

(ग) प्रेमचन्दोत्तर युग मे कहानी का स्वरूप एव दाम्पत्य जीवन

तृतीय अध्याय

हिन्दी कहानी साहित्य

हिन्दी का मूल स्वरुप मुख्यत प्राचीन भारतीय सस्कृत परम्परा से ही नि सृत प्रतीत होता है। सस्कृत साहित्य मे कहानी अथवा आख्यायिका को गद्य साहित्य का ही एक प्रमुख भेद माना गया है। प्राचीन सस्कृत साहित्य मे कहानी के पर्याय अनेक कथा रुप प्राप्त होते है। कथा के अन्तर्गत ऐतिहासिक, पौराणिक अथवा कल्पना मूलक कहानियॉ आती है। गाथा, वार्ता अथवा गल्प का प्रयोग भी कहानी के ही समानान्तर किया जाता रहा है।

हिन्दी मे आख्यानात्मक गद्य के प्रारम्भिक मुद्रित रुप का विकास 19वीं शताब्दी मे प्रारम्भ हुआ। हिन्दी कथा साहित्य का आविर्भाव कदाचित उन्नीसवी शताब्दी के साहित्य की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना है। इसके पहले का हिन्दी कथा साहित्य नियमबद्ध तथा शास्त्रीय रूढियो से ग्रस्त था, फलत कुछ काल बाद उसका विकास रुक सा गया। (पश्चिमी नवीनता की भूख तथा मर्यादा की वेडियो से चिढ के कारण वह निरन्तर विकसित होता रहा।) यदि हम हिन्दी कहानी–साहित्य की गहन पडताल करे तो हमे इस ऐतिहासिक सत्य को मानना ही पडेगा कि जिसे आधुनिक हिन्दी

कहानी कहा जाता है वह अतीत की देन नहीं है। हमारे युग के महान कथाकार मुशी प्रेमचन्द्र ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है—– हमे यह स्वीकार कर लेने मे सकोच न होगा कि उपन्यासो की ही तरह आख्यायिका की कला भी हमने पश्चिम से ली है– कम से कम कम इसका आज का विकसित रुप तो पश्चिम का ही है।'[1] लेकिन यदि हम विवेचनात्मक दृष्टि से देखे तो आधुनिक हिन्दी कहानी पर पश्चिम की शिल्प शैली का अत्यधिक प्रभाव होते हुए भी, उसमे भारतीय कला शिल्प की शास्त्रीय और लोक–कथा की प्रवृत्तिया अक्षुण्य मिलती है। आधुनिक हिन्दी कहानी पश्चिम की उपज होते हुए भी पूर्ण रूप से भारतीय है।

19वी शताब्दी से लेकर आज तक हिन्दी कहानी के इतिहास को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से तीन भागो मे विभाजित किया जा सकता है–

(1) प्रेमचन्द पूर्व कहानी का स्वरुप एव दाम्पत्य जीवन।

(2) प्रेमचन्द युगीन कहानी का स्वरुप एव दाम्पत्य जीवन।

(3) प्रेमचन्दोत्तर कहानी का स्वरुप एव दाम्पत्य जीवन।

प्रेमचन्द पूर्व कहानी का स्वरूप एव दाम्पत्य जीवन

हिन्दी कहानी अपने विकास के शैशव काल मे पौराणिक आख्यानो या अतिरजित कल्पना पर आधारित है। तिलस्मी ऐयारी घटना सदर्भों एव रहस्यमय रोमाचक वृतान्तो को आधार बनाकर लिखी गयी कहानिया आधुनिक कहानी की मूल शर्तों को भी पूरा नही करती। इस सदर्भ मे फोर्ट विलियम कॉलेज मे लिखी गयी

खडी बोली की अनेक पुस्तको मे 'लल्लू लाल कृत—प्रेमसागर तथा पडित सदल मिश्र' कृत —नासिकेतोपाख्यान उल्लेखनीय है। 'प्रेम सागर श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के चतुर्भुज मिश्र कृत ब्रजभाषा अनुवाद का खडी बोली रूपान्तर है। इसी प्रकार पडित सदल मिश्र का नासिकेतोपाख्यान यजुर्वेद तथा कठोपनिषद की यम–नचिकेता कथा पर आधारित ग्रथ है। भाषा की दृष्टि से इनमे ब्रजभाषा रूपो, पूर्वी प्रयोगो पण्डिताऊपन और अनेक स्थलो पर असतुलित शिथिल वाक्यो के होने पर भी खडी बोली गद्य का पर्याप्त स्वच्छ सुष्ठु रूप है।[2]

ऐतिहासिक दृष्टि से इशा अल्ला खॉ कृत रानी केतकी की कहानी', पडित गौरीदत्त' कृत 'देवरानी जेठानी' की कहानी तथा राजा शिव प्रसाद' कृत राजा भोज का सपना' प्रारम्भिक कहानियो के उदाहरण है। इन रचनाओ मे कथा कहने का भाव तो है, लेकिन कहानी का आधुनिक रूप परिलक्षित नहीं होता।

आधुनिक हिन्दी कहानी को आख्यायिका और गल्प से आगे ले जाकर वास्तविकता की भावभूमि पर खडा करने का श्रेय 'सरस्वती' पत्रिका को जाता है। यह कटु सत्य है, कि भारतेन्दु युग मे कहानी कला के विकास की दिशा मे जितने भी प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रयत्न हुए, उन समस्त प्रयोगो एव गद्य शैलियो मे हिन्दी कहानी का कोई उल्लेखनीय स्वरूप निर्मित न हो सका, फिर भी कहानी के भावी रूप के निर्माण मे भारतेन्दु काल के व्यग्य चित्रो लेखो और स्वप्न कथाओ ने नयी जीवनदायिनी शक्ति का सचार किया, जो अपने विकसित रूप मे सरस्वती मे उदित हुए।

सरस्वती पत्रिका मे प्रकाशित किशोरी लाल गोस्वामी की कहानी इन्दुमती (1900 ई) से हिन्दी कहानी का प्रारभ माना जाता है। यह अजयगढ के राजकुमार 'चन्द्रशेखर तथा देवगढ की राजकुमारी इन्दुमती के विशुद्ध आदर्श प्रेम की कहानी है।

'इन्दुमती अपने वृद्ध पिता (पूर्व मे देवगढ का शासक) के साथ विन्ध्याचल के घने जगल मे रहती थी। यवन शासक इब्राहिम द्वारा देवगढ के विनाश के पश्चात, राजा अपनी 4 वर्षीय पुत्री ओर अपने 50 कृतज्ञ सरदारो के साथ यवनो से बदला लेने की इच्छा मन मे लिये हुए छिपकर रहने लगा। बोधयुक्त होने पर इन्दुमती का जीवन सासारिक सुखोपभोगो से अनभिज्ञ, सिर्फ वृक्षो पशु–पक्षियो, लताओ एव गगा के प्रवाह के मध्य व्यतीत हुआ। इन्दुमती ने अपनी सोलह वर्ष की उम्र तक अपने पिता के अतिरिक्त अन्य किसी पुरुष जाति को देखा तक नही था अत एक दिन एक सुदर पुरुष को जगल मे देखकर उसने उसके देवता होने का अनुमान सहज ही लगा लिया। वार्तालाप के उपरान्त उसके राजकुमार होने का पता चला अत वह उसको अपने साथ लिवा लायी अपरिचित युवक को देखकर उसके पिता अत्यत क्रुद्ध हुए परन्तु यह जानकर कि वह राजकुमार है उन्होने अपनी कन्या उसको सौप दी।' [3]

इस कहानी के कथ्य से ऐसा जाना जाता है कि उस समय भारतीय समाज मे कन्या के विवाह की आयु 16 वर्ष निश्चित की गयी थी जिसका उदाहरण देवगढ़ के शासक के कथन से दृष्टव्य होता है–

'मेरी इन्दुमती 16 वर्ष की हुयी अब उसे कुवारी रखना किसी तरह उचित नही है और ऐसी अवस्था मे जबकि मेरी प्रतिज्ञा पूरी हुयी और इन्दुमती के योग्य वर भी मिला। उसने इन्दुमती से प्रतिज्ञा की है कि मै तुम्हे प्राण से बढकर चाहूँगा और दूसरा विवाह भी न करूँगा जिससे तुम्हे सौत की आग मे न जलना पडे। एक स्त्री के लिए इससे बढकर और कौन बात सुख देने वाली है।' 4

उपरोक्त कथ्यो का अध्ययन करने के उपरान्त यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है, कि तत्कालीन समय का लेखक स्त्री के सुखी–दाम्पत्य जीवन की कामना करता दिखायी देता है। यद्यपि परिवारो मे स्त्री की स्थिति इस कामना के उलट थी।

हिन्दी साहित्य मे 'पडित महावीर प्रसाद द्विवेदी का व्यक्तित्व बडा ही ओजपूर्ण है। साहित्य को उन्होने नयी दिशा दिखायी थी। द्विवेदी युग मे प्रेम आदि विषयो पर साहित्य रचना बहुत मान्य नहीं थी। सामन्ती अर्थव्यवस्था के इस युग मे समाज एव परिवार मे बहुविवाह, पर्दाप्रथा आदि के कारण परिवार मे सौत कलह आदि समस्याये थी, जिनको देखते हुए कहा जा सकता है, कि दाम्पत्य जीवन बहुत सुखी नहीं था। 'प्लेग की चुडैल' कहानी मे 'भगवान दास' ने सामती समाज मे व्याप्त नारी सबधी उन मान्यताओ को स्वर दिया है जहॉ प्लेग ग्रस्त नारी को छोडकर सामन्त अन्य कहीं जाकर बस जाते है तथा नारी के बच जाने पर उसको 'चुडैल' घोषित कर देते है। कहानी मे नारी के दो रूपो की झलक मिलती है—'पत्नी रूप मे वह पतिव्रता है, तथा पति आज्ञा

पालन ही उसका प्रमुख धर्म है। दूसरा रूप मातृत्व का है।' 5

उपर्युक्त कहानीकारो के रचनात्मक प्रयत्नो पर दृष्टि डालते हुए कहा जा सकता है कि इनके प्रेरणा स्रोत —इशा अला खॉ पडित सदल मिश्र और 'लल्लू लाल' आदि पूर्ववर्ती कहानीकारो के प्रेरणा स्रोतो से भिन्न है। वस्तुत शिल्प एव कथ्य की दृष्टि से उक्त कहानिया अपने पूर्ववर्ती लेखको के कहानी शिल्प से आगे बढी हुयी देखी जा सकती है।

प्रेमचन्द युग मे कहानी का स्वरूप एव दाम्पत्य जीवन

हिन्दी कहानी को ही यह सुयोग प्राप्त हो सका कि इसका आर्विभाव जिन मनीषियो के द्वारा हुआ उन्ही की साहित्य साधना से इसका भी विकास हुआ। यह विकास इतना व्यापक और विस्तृत था, कि इसने अपने मे एक स्वतत्र युग की प्रतिष्ठा की। हिन्दी कहानी के आर्विभाव मे प्रेचन्द एव प्रसाद का व्यक्तित्व मुख्य था किन्तु कहानी के विकासक्रम मे प्रेरणा एव प्रभाव की दृष्टि से गुलेरी जी का स्थान अपने आप मे स्वतत्र है। इनकी कहानियॉ 'सुखमय जीवन (1911), 'बुद्धू का काटा' और 'उसने कहा था' (1915) हिन्दी कहानी के विकास के प्रथम युगद्वार है।

प्रेमचन्द मूलत आदर्शोन्मुख यथार्थवादी परम्परा के कहानीकार थे। इनका युग न केवल साहित्य अपितु राष्ट्रीय जागरण की दृष्टि से महत्वपूर्ण काल है। प्रेमचन्द का कहानी साहित्य इतना व्यापक और बिशाल है कि उसमे समूचा एक युग समा गया है। वे स्वय एक कहानी युग थे, जिसमे हिन्दी कहानियो के सच्चे तत्त्व

अकुरित हुए विकसित हुए और उनसे भारतीय कहानी साहित्य मे सुगन्धि आयी। मधुरेश के शब्दो मे समस्त सामाजिक–राजनीतिक प्रसगो और घटनाक्रमो, जनसघर्ष और सामाजिक परिवर्तन की आकाक्षा के प्रामाणिक और विश्वसनीय अकन की दृष्टि से प्रेमचद से बेहतर कोई दूसरा माध्यम नही है। यह अकारण नही है कि सामाजिक परिवर्तन की आकाक्षा रखने वाले हर पीढी के लेखक उनसे जुडकर गहरा सुख अनुभव करते रहे है।'[6]

प्रेचमन्द की कहानियो का कथ्य वैविध्यपूर्ण है, और उसमे तत्कालीन समाज को समग्रता मे आकने की आकाक्षा विद्यमान है। डा हेतु भारद्वाज के अनुसार——

'प्रेमचन्द की शक्ति इस तथ्य मे है कि अपनी कहनियो मे जीवन का जितना व्यापक तथा विस्तृत फलक प्रेमचन्द ने लिया उतना हिन्दी के किसी अन्य कहानीकार ने नही।'[7]

एक ओर उनकी कहानियो मे नारी पात्रो की त्रासदी का बयान है तो दूसरी ओर पुरुषो के युग सघर्ष को भी अनदेखा नही किया गया है। प्रेमचन्द की प्रारम्भिक कहानियो के स्त्री पात्रो के चरित्र प्रतिनिधि चरित्र है——'सौत, 'मर्यादा की वेदी', आदि की नारियो के लिए, पति एव उसका प्रेम ही सर्वस्व है उसकी मर्यादा और सम्मान की रक्षा के लिए वे प्राण तक देने को तत्पर है। 'मर्यादा की वेदी' की 'प्रभा' की मर्यादा इन स्त्रियो की वह परम्परागत दीवार है, जिसके पीछे पुरानी मान्यताए एव लोकनिन्दा प्रमुख हैं। तत्कालीन परिवारो मे स्त्री के वेदनामय, निराशापूर्ण और विवशताओ से भरे दाम्पत्य जीवन की अभिव्यक्ति बडे ही मार्मिक

व्यक्तित्व और निजत्व की घोषणा कर दी जिसका स्पष्ट रूप कुसुम कहानी मे देखा जा सकता है। कुसुम एक परम्परावादी आदर्शवादी पत्नी है परन्तु उसका पति उससे घृणा करता फिर भी कुसुम उसका देवता की तरह सम्मान करती है। वही पति जब उसके इस भावना की निरतर उपेक्षा करता रहता है, तब स्त्री का आक्रोश बडे तीखे शब्दो मे प्रकट होता है— ऐसे देवता का रूठे रहना ही अच्छा है जो आदमी इतना–स्वार्थी, दभी इतना नीच है उसके साथ मेरा निर्वाह न होगा। [9] इस प्रकार प्रेमचन्द की —'ब्रह्म का स्वाग' मिस पद्मा' नैराश्य लीला शान्ति आदि कहानियो मे भी तत्कालीन दाम्पत्य जीवन के अनेक चित्र देखे जा सकते हैं।

विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक प्रेमचन्द जी की ही प्रवृत्तियो को लेकर आगे बढने वाले कहानीकार है। इन्होने मुख्यत पारिवारिक दायरे मे सकट और मूल्य निर्मित की स्थितियो को कथ्य का विषय बनाया है।

कहानी का काव्यात्मक साहित्यिक विकास जयशकर प्रसाद' से ही माना जाता है। इनकी कहानिया मुख्यत रागात्मक लगाव की कहानिया है। इनमे प्रेम को विशेष महत्व प्रदान किया गया है। कवि होने के कारण इनकी कई कहानियो मे काव्यत्व का पुट भी आ गया है, भाषा, प्रकृति का मानवीकरण आदि विशेषताए भी उनकी कविताओ के अनुरूप हो गयी है। 'प्रसाद' व्यक्तिवादी विचारधारा के कहानीकार है। अपने युग के अधिकाश कथाकारो की भाति प्रसाद ने भी, स्त्री–शिक्षा–विषयक अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत

किया। उत्सर्ग की भावना एव करूणा दो ऐसे तत्व है जिससे प्रसाद के नारी पात्र प्रभावित दिखायी देते है। स्त्रियोचित समस्त गुण–क्षमा लज्जा, सौन्दर्य प्रेम एव शील इनके नारी पात्रो मे विद्यमान है। डॉ लक्ष्मी नारायण लाल के अनुसार – प्रसाद की कहानियो के पुरुष पात्र इन्ही स्त्री पात्रो की परिधि मे सीमित है ये उन्हे पतन की ओर न ले जाकर इनमे प्राणो का सचार करती है। इनकी अधिकतर चर्चित कहानिया प्रेम की पृष्ठभूमि पर आधारित है।' 10

प्रेमचन्द युग के चद्रधर शर्मा गुलेरी की अतिम कहानी 'उसने कहा था' हिन्दी कथा साहित्य मे उनकी कीर्ति का प्रधान स्तम्भ है। यह कहानी कला की दृष्टि से भी परिपक्व लगती है। इसमे पूर्व दीप्ति का प्रयोग इसे आधुनिक तकनीक से जोड देता है। प्रेम और विश्वास' की गरिमा को स्थापित करने की दृष्टि से कहानी बहुत उच्च्च कोटि की है।

पाण्डेय वेचन शर्मा उग्र' भी गुलेरी जी की तरह स्वतत्र कथा व्यक्तित्व रखते है। सामाजिक जीवन का वह पक्ष, जो चन्द्रमा के एक हिस्से की भाति बराबर छिपा ही रहता है, इन्होने रूसी ल्यूनिक तृतीय की भाति अपने साहित्य मे उसको यथार्थरूप मे व्यक्त किया है।" तथाकथित सभ्य सफेदपोश समाज मे अनैतिकता उच्छृखलता और अशोभन स्थितिया मदिरा और फैशनपरस्ती के नाम पर नारी की दुर्गति, पुरुष वर्ग की वासना और नारी की विवशता एव आर्थिक परतत्रता आदि ऐसे नये सूत्र थे, जो तत्कालीन परिवेश मे उभर रहे थे, और भारतीय समाज के गार्हस्थ जीवन के लिए

जर्बदस्त चुनौती के रूप मे प्रस्तुत हो रहे थे। ये विकृतियॉ ही उग्र की कहानियो का मुख्य विषय है। जिनको पूर्ण यथार्थता के साथ प्रस्तुत करने की चेष्टा की गयी। भारतीय परिवारो मे शोषित नारी के पक्ष मे आवाज उठाने वाले उग्र ने अपनी कहानियो मे वैवाहिक रूढियो पर करारा प्रहार किया।

काने का ब्याह' कहानी मे उग्र ने पुरुष की लोलुप सवेदनाओ को उद्घाटित किया है। मर्द स्वय काना होकर भी कानी औरत से शादी नही करना चाहता। जैसा कि कहानी का काना नामक 'कमलनयन' किसी भी मूल्य पर सुमुखि से विवाह करना चाहता है परन्तु दस–हजार रुपया देने पर भी वह उसको नही प्राप्त कर पाता अन्तत उसको 'सुमुखि' की कानी बहन का ही वरण करना पडता है। उसके अतिरिक्त इनकी 'करुण–कहानी' मे भी नारी के निरीह अस्तित्व की झलक दिखायी पडती है। 'उग्र के मत मे—नारी का अस्तित्व निरीह नहीं है, वह पुरुष की प्रेरणा एव शक्ति है।" 11

हिन्दू सस्कृति मे पत्नी को अर्द्धांगिनी गृहस्वामिनी एव सम्माननीया माना गया है, परन्तु इस युग मे उसकी स्थिति अत्यत दयनीय थी। नारी की इस स्थिति को सुभद्राकुमारी चौहान ने अपनी एक कहानी दृष्टिकोण' मे प्रदर्शित किया है–'दृष्टिकोण' की 'निर्मला' को 'सुभद्राकुमारी चौहान' ने जागरूक, दृढ एव स्वतत्र विचारो वाली चित्रित किया है। निर्मला पति एव सास के विरोध करने पर भी बाल–विधवा विट्टन को गर्भवती होने के कारण प्रश्रय देने की कोशिश करती है, जिसके प्रतिक्रियास्वरूप पति द्वारा मारा गया एक

थप्पड उसके मन मे एक आक्रोशजनित एहसास करवा देता है, कि वह गृहस्वामिनी नही मात्र दासी है। अपनी विवशता प्रकट करते हुए वह कहती है – तुम्हारी तरह मैं भी बिना घर के हूँ बहन यदि इस घर पर मेरा भी कुछ अधिकार होता तो मै तुम्हे इस कष्ट के समय कही न जाने देती। क्या करूँ विवश हूँ।[12] इनकी ग्रामीणा तथा भग्नावशेष' आदि कहानियाँ भी नारी सबधी इसी प्रकार के दृष्टिकोण की सूचक है।

हिन्दी कहानी का विकास राष्ट्रीय मुक्ति चेतना के परिवेश मे हुआ। अग्रेजो के चौतरफा शोषण से देश की जो दुर्गति हुयी कहानीकारो ने उसे अनदेखा नहीं किया। प्रेमचन्द युग की प्रमुख कहानियो को देखते हुए कहा जा सकता है कि एक ओर 'प्रेमचन्द', सुर्दशन', 'उग्र आदि तत्कालीन सदर्भो से जुडे हुए स्वस्थ्य और मानवीय मूल्यो की प्रतिष्ठा मे सलग्न थे तो दूसरी ओर 'प्रसाद 'गुलेरी' की कहानियाँ प्रेम की महार्धता का उद्घोष करती है। प्रेमचन्द के समकालीन कहानीकारो ने हिन्दी कहानी को 'यथार्थवादी रुप प्रदान किया है। इस यथार्थवाद के साथ आदर्श भी सर्वत्र जुडा हुआ है। इस युग की कहानियो मे विचार और शिल्प के स्तर पर इतना वैविध्य है कि कहानी की बाद की सभी प्रवृत्तियो के बीज इनमे आसानी से ढूढे जा सकते हैं। स्त्री के पक्ष मे विवश दाम्पत्य के अनेक चित्र प्रेमचन्द युग की बहुत सी कहानियो मे देखे जा सकते है।

प्रेमचन्दोत्तर युग मे कहानी का स्वरूप एव दाम्पत्य जीवन

इस युग तक आते–आते ब्रिटिश साम्राज्य भारत मे अपनी जडे पूर्णतया स्थापित कर चुका था। स्वाधीनता आदोलन के अग्रणी नेता महात्मा गाधी ने भी अपने राजनीतिक आदोलनो द्वारा महिलाओ की जागृति हेतु अथक सघर्ष किया जिसके फलस्वरूप स्त्रियो मे जागृति की लहर उत्पन्न हुयी और वे अपने अधिकारो के प्रति सचेत होने लगी। अधिकारो की प्राप्ति के लिए यूरोप की स्त्रियो को लम्बे समय तक सघर्ष करना पडा था। लगभग इसी समय से यूरोप के साथ भारतीयो के सबधो मे उत्तरोत्तर वृद्धि होती गयी जिससे देश मे राष्ट्रीय भावना का प्रचार प्रसार हुआ। स्वामी दयानद विवेकानद एव तिलक ने – धर्म आध्यात्म और राजनीति मे भारत वर्ष की श्रेष्ठता पहले से ही सिद्ध कर दी थी, इसका प्रभाव भारतीय साहित्य पर भी पडे बिना नही रह सका। 1921 मे महात्मा गाधी द्वारा शुरु किये गये सत्याग्रह आदोलन का प्रभाव भी साहित्य, समाज और धर्म पर दृष्टिगत होता है। आर्य समाज के विविध सुधारो द्वारा भी साहित्यिक रचनाओ के लिए अनेक विषय और उपादान प्राप्त होने लगे। सन् 1921 – सन् 1930 तक का समय स्वाधीनता आदोलन के अभूतपूर्व उभार का माना जाता है। प्रसाद' की गुन्डा कहानी इसी काल–क्रम मे लिखी गयी। 'पाडेय बेचन शर्मा उग्र' का कहानी सग्रह 'चिन्गारियॉ' को जब्त किया जाना भी इसी दौर का एक महत्वपूर्ण प्रसग है। यूरोप मे फ्रायड के बढते प्रभाव और सोवियत सघ मे हुयी क्राति का आशिक प्रभाव भारत मे भी क्रमश महसूस किया जाने लगा था, इसका प्रभाव साहित्य पर भी

पडना प्रारभ हो गया और इसी समय जैनेन्द्र की कहानियो के पहले सग्रह फासी ने लोगो का ध्यान आकर्षित किया। प्रेमचन्द जी ने जैनेन्द्र को हिन्दी का गोर्की कहा था। इलाचद जोशी ने भी लगभग इसी समय कहानिया लिखना प्रारभ किया था। जिनका विषय मनोवैज्ञानिक से अधिक मनोविश्लेषणात्मक है।

1936 मे प्रेमचद के निधन से पूर्व प्रगतिशील लेखक सघ की स्थापना हुयी जिसकी अध्यक्षता प्रेमचद ने की थी। अपने अध्यक्षीय भाषण मे प्रेमचन्द ने साहित्य के लिए परिवर्तित कसौटी की माग उठायी थी, और सामाजिक सदर्भो मे साहित्य की भूमिका के महत्व को रेखाकित किया था। 1939–42 तक हुये द्वितीय विश्व के परिणाम स्वरूप उत्पन्न – मानवीय मूल्य सकट, नैतिकता का ह्रास, औद्योगिक क्रातियो का महानगरो पर पडने वाला प्रभाव स्वाधीनता आदोलन मे जूझती हुयी भारतीय जनचेतना और स्वतत्रा प्राप्ति के साथ बटवारा आदि विविध राष्ट्रीय एव अतराष्ट्रीय प्रभावो और सास्कृतिक सक्रमणो ने इस काल के कथा सर्जको को अन्दर तक प्रभावित किया, जिसके फलस्वरूप इस काल की कहानिया प्रेमचन्द युगीन कहानियो से सर्वथा भिन्न दिखायी देती हैं।

प्रेमचन्दोत्तर युग की कहानिया मनुष्य और उसके जीवित अनुभव क्षणो के बीच की सबध भावना पर आधारित मानी जाती है। "इस युग के कृतिकार परिस्थितियो के प्रति जागरूक नहीं, वरन आत्मचेतन् भी है। यह आत्मचेतना प्रकारान्तर से रचनात्मक प्रक्रिया के प्रति जागरूकता का लक्षण ही है। इस युग की कहानी आधुनिक कहानी रचना और अवधारणा मे गहरी समानधर्मिता स्थापित करती

है और पाठक की आस्था इस सत्य मे दृढ करती है कि महान कला मनुष्य की बाहरी अनुभूतियो के दबाव और उसकी स्पष्ट प्रचेष्टा के बीच के स्थिर ससर्ग पर आधारित होती है।' 13

इस युग मे हिन्दी कहानी का विकास मुख्यत तीन दिशाओ मे हुआ। कुछ कहानिया मनोवैज्ञानिक धारणाओ के सदर्भ मे व्यक्ति सत्य के उद्घाटन तक सीमित रही – जैनेन्द्र अज्ञेय इलाचन्द्र जोशी आदि की अधिकतर कहानिया इसी कोटि मे रखी जा सकती है। दूसरे प्रकार की कहानिया समाज सापेक्ष प्रश्नो से सम्बद्ध है, और मार्क्सवादी चितन से प्रभावित है। इस वर्ग के प्रमुख कहानीकार – यशपाल, राघेयराघव, भैरव प्रसाद गुप्त अमृत राय आदि हैं। तीसरी कोटि की कहानियो मे दृष्टि विशेष का अनुशासन नही है और उनमे व्यष्टि सत्य तथा समष्टि सत्य एक साथ अभिव्यक्त हुए है 'उपेन्द्रनाथ अश्क' अमृत लाल नागर भगवतीचरण वर्मा आदि कहानीकार इसी वर्ग मे आते है।

विश्व के कुछ महत्वपूर्ण चितको एव मनोवैज्ञानिको – 'मार्क्स फ्रायड एडलर, युग को आधार बनाकर हिन्दी के कुछ प्रमुख कथाकारो ने अपनी कथाओ मे मानव मन की गहराइयो मे झाकने का प्रयास किया है।

जैनेन्द्र ने अपनी कहानिया एक विशिष्ट दार्शनिक भूमि से ग्रहण की है। रचनात्मक शिल्प के विकास के साथ ही साथ दर्शन और मनोविज्ञान बोध के विशिष्ट स्तर उनकी कहानियो मे एकात्म होते हुए देखे जा सकते हैं। सतही दिखायी पडने वाली जैनेन्द्र के शिल्प की असतर्कता ही उनका सर्तक शिल्प है। यह

शिल्प प्राय उनकी कहानियो को एक प्रतीकात्मक अर्थवत्ता प्रदान करता है। जैनेन्द्र के अनुसार—'नितात स्त्री और नितात पुरुष व्यक्तितव पाता ही नही। वे एक दूसरे मे केवल अभाव की ही पूर्ति नही करते अपितु परस्पर सम्मिलन मे एकमेक होकर अपने—अपने अह को विगलित भी करते है। इसीलिए वह स्त्री पुरुष के सर्मपण पर बल देते है। [14]

पत्नी' कहानी मे समाज मे नारी का क्या स्थान है तथा पुरुष उसको लेकर क्या सोचता है, तथा कैसा व्यवहार करता है, इसी को अभित्यक्त करने का प्रयास किया गया है। अपनी पत्नी के त्याग सहनशीलता एव सद्व्यवहार के बावजूद पति कालिन्दीचरण का जरा—जरा सी बात पर क्षुब्ध हो जाना पुरुष मानसिकता का ही प्रतीक है। कम पढी लिखी समर्पिता पत्नी अपने हिस्से का भोजन तक पति के मित्रो को दे देती है। इससे उसका त्याग ही प्रदर्शित होता है। यह बिम्ब तत्कालीन पतिव्रता भारतीय नारियो की मानसिकता का द्योतक है। परन्तु उसका पति उसके इस भाव को जानने समझने की कोशिश नहीं करता इससे उसको आत्मपीडा होती है और वह सोचती है कि "देखो उन्होने एक बार भी नही पूछा कि तुम क्या खाओगी ? क्या मै यह कर सकती थी, कि मै तो खा लूॅ और उनके मित्र भूखे रहे, पर पूछ लेते तो क्या था ? इस बात पर उसका मन टूटता सा है। मानो जो तनिक सा मोह था, वह भी कुचल गया हो।" [15] उसे लगता है, कि पति के लिए देश समाज, मित्र सब कुछ है, बस उसकी कोई सत्ता नही है।

जैनेन्द्र की अन्य कहानियो मे स्त्रियॉ भी उतनी ही स्वतत्र है जितने पुरुष। स्त्री के सबध मे यर्थाथ बोध का एक अन्य रूप भी प्रकट होता है जागरूकता से उत्पन्न नारी की स्वाधीन चेतना एक विकृत रूप भी ग्रहण करने लगी थीं। इस सदर्भ मे 'रत्नप्रभा' कहानी की 'रत्नप्रभा जो एक असाधारण स्त्री और पत्नी होने के साथ–साथ एक अन्य युवक के प्रति आसक्त हो जाती है। यहॉ पर कथाकार ने यह दिखाने का प्रयास किया है, कि पत्नी के शरीरिक आकाक्षा की तृप्ति सिर्फ पैसे से नही हो सकती। इसमे स्त्री के यौनकुठा का चित्रण है। इस प्रकार पारिवारिक एव सामाजिक वर्जनाओ के विरोध मे खडी हुयी तथा दाम्पत्य जीवन के प्रति प्रतिबद्धता को अस्वीकार करने वाली नारियो के चरित्रो की अभिव्यक्ति भी उक्त कहानियो मे देखी जा सकती है। स्वाधीन चेतना की भावना से प्रभावित कुछ अपवाद रूप ही सही, कुछ स्त्रियो मे उन्मुक्त प्रेम के वरण का भाव तथा विवाह सस्था को चुनौती देते हुए, अपने स्वतत्र मन्तव्य की घोषणा है। इस सबद्ध मे 'एक रात', तथा 'प्रणयदश' कहानी दृष्टव्य है। 'एक रात' कहानी मे दृष्टव्य है, कि नायिका सुर्दशना बनाम स्त्री पूर्ण सर्मपण के पश्चात शाति लाभ करती है। कहानी के तीस वर्षीय नायक जयराज का मुख्य उद्येश्य देशहित है जिसको लेकर उसके भीतर एक द्वद उठता रहता है। जयराज की अतश्चेतना मे एक ओर स्वराज्य तो दूसरी ओर विवाह का अर्न्तद्वन्द्व निरतर विद्यमान रहता है। जबकि सुदर्शना का व्यक्तित्व उससे भिन्न और अडिग है। वह अपने पूर्व पति को छोडकर जयराज के पास आती है और जयराज के बच्चे की 'मा' बनने के बावजूद उसे भी बाधकर नही

रखना चाहती। उसका विचार उभर भर सडाध भरे घुटे–घुटे जीवन से एक रात की कुछ घडियो का मुक्त, स्वच्छद, सुखद अनुभव उसमे शेष सारी जिदगी का बोझ ढोने की सामर्थ्य पैदा कर देता है। कुछ इसी प्रकार का भाव प्रणयदश कहानी मे भी है जिसकी नायिका 'सविता' एक डॉक्टर है उसमे अपना बोझ उठाने की सामर्थ्य है। इसका नायक प्रद्युम्न एक साहित्यकार है। सविता की दृष्टि मे बिना विवाह के मॉ बनना कोई अपराध नही। अत उसके बच्चे की मॉ बनकर भी वह अलग रहने का निश्चय करती है।

इस प्रकार देखा जाय तो जैनेन्द्र ने अपनी कहानियो मे नारी मन के अर्न्तद्वन्दो को उद्घाटित करने वाली अधिकाशत कहानिया लिखी है। इन कहानयो का परिवेश सामाजिक होते हुए, सामाजिक यथार्थ की कहानियॉ न होकर व्यक्ति के अर्तमन और व्यक्ति के भीतरी यथार्थ की कहानिया है। "डॉ० लक्ष्मी नारायण लाल के शब्दो मे कह सकते है, कि – "इस चरित्रो की सबसे बडी कसौटी यह है कि ये अर्न्तमुखी अधिक होते है। सबके सब किसी न किसी अर्न्तद्वन्द, घात प्रतिघात से अनुप्राणित रहते है तथा इन्हे पूर्ण रूप से समझना कठिन कार्य है।" [16] इस प्रकार जैनेन्द्र के कथा ससार को निश्चय ही एक विशिष्ट और अलग कथा ससार की शुरूआत माना जाता है।

'अज्ञेय विशुद्ध मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति के कहानीकार माने जाते है। परिस्थिति और वातावरण की मनोवैज्ञानिक चेतना की जैसी सजीव अनुभूति अज्ञेय की कहानियो मे है, वैसी समकालीन लेखन मे कम पायी जाती है।" [17] अज्ञेय के गभीर व्यक्तित्व की स्पष्ट झलक

उनकी कहानियो मे भी दिखायी पडती है, जो उनकी कहानियो को निजता प्रदान करती है। इस निजता की जटिल बुनावट से लेखक की कहानियो मे वैचारिकता अनुभव तथा मानवीय प्रतिबद्धता आदि का बडा ही जटिल सहअस्तित्व दिखायी पडता है। इस जटिल सहअस्तित्व से एक ओर एक ओर रोज तथा अन्य और कहानियो की सृष्टि होती है, तो दूसरी ओर बहुत से शुष्क बौद्धिक सवेदनाओ से ग्रस्त रचनाए रचित होती है।

दाम्पत्य जीवन पर आधारित 'रोज अज्ञेय की सर्वोत्तम कहानी है तथा ये हिन्दी की कुछ क्षेष्ठ कहानियो मे अन्यतम है। कहानी मे मालती के व्यक्तित्व को दाम्पत्य जीवन पे जोडकर चित्रित किया गया है। मालती के अकेलेपन और विषम परिस्थितियो से उसका जीवन यन्त्रवत होने, तत्पश्चात उसकी एकसरता और टूटन के दर्द का चित्रण ही कहानी मे मुख्य विषय है। उसकी टूटन और उदासी को कहानी मे किसी सिद्धात के सहारे नही वरन् कुछ सदर्भो एव सवादो के माध्यम से ही व्यक्त किया गया है, जैसे बर्तन माजना खाना बनाना बच्चे का रोना, उसको सभालना आदि से मालती के आन्तरिक भावो का अभ्युदय स्वत ही हो जाता है। अपने दूर के रिश्ते के भाई (जो भाई कम है, एक परोक्ष प्रणय भावना से युक्त सखा अधिक है) के आगमन से भी उसमे कोई विशेष उत्साह और किसी प्रसन्नता का सचार नहीं होता। इस बिन्दु पर पहुँच कर ऐसा आभास होता है, कि वह एकरस दाम्पत्य का बोझ ढोते–ढोते भावना शून्य हो गयी है और अपनी मूक अर्न्तवेदना किसी से व्यक्त नहीं कर पा रही है। इस कहानी के माध्यम से

कथाकार ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि स्त्री भारतीय समाज एव परिवार मे गृहस्थी के परिवेश मे लिपटकर टूटती जा रही है और किस प्रकार वह इन जजालो मे फसकर उसकी जिन्दगी यात्रिक होती चली जाती है। यह कहानी कुठित दाम्पत्य का एक मार्मिक चित्र प्रस्तुत करती है।

यशपाल

यशपाल मुख्यत मार्क्सवादी कथाकार है। इनकी कहानियॉ विशेषताया मध्यवर्गीय सामाजिक एव पारिवारिक पृष्ठभूमि पर आधारित है जिसके फलस्वरूप इनको प्रेमचन्द के उत्तराधिकारी के रूप मे देखा जा सकता है। कथ्य एव शिल्प की दृष्टियो से यशपाल प्रेमचन्द के समान ही दिखायी देते है। शातिप्रिय द्विवेदी के अनुसार—"कथानक चित्रण चरित्राकन और शैली की दृष्टि से यशपाल निश्चय ही प्रेमचन्द की तिरोहित प्रतिभा की तरूण शक्ति है।"[18] डॉ बच्चन सिह को प्रेमचद और यशपाल की रचना प्रक्रिया मे बहुत साम्य दिखायी देता है—"प्रेमचद की रचना–प्रक्रिया से यशपाल की रचना प्रक्रिया मिलती जुलती है। दोनो के मन मे पहले कोई विचार उठता है। फिर पात्र स्थितियॉ, घटनाए आदि को अन्वेषित कर लिया जाता है।'[19]

यशपाल ने अपने उपन्यासो की ही भाति कहानियो मे भी नारी की सामाजिक, पारिवारिक समस्याओ एव उनसे उत्पन्न द्वन्द्व का बडा सजीव अकन प्रस्तुत किया है। यशपाल सामाजिक रूढियो के साथ–साथ परम्परागत वैवाहिक सबधो की भी आलोचना करते हुए दिखायी देते है जिसके कारण नारी पुरुष की दासी एव

सम्पत्ति समझी जाती है। इस स्थिति का चित्रण कथाकार ने मृत्युजय' कहानी के माध्यम से पति पुरुष की मानसिकता को दर्शाते हुए किया है। पुरुष शादी इसलिए करता है कि उसको घर के काम–काज के लिए एक औरत मिल जाती है। भारतीय सामाजिक एव पारिवारिक व्यवस्था के अनुसार–विवाह पुरुष द्वारा नारी पर अधिकार की घोषणा का ही परिचायक समझा जाता है।''[20] इन सामाजिक परम्पराओ एव रूढियो का विरोध करते हुए कथाकार ने पत्नी बनाम नारी को इन रूढियो से छुटकारा दिलाते हुए, उसकी शिक्षा एव आर्थिक स्वतन्त्रता का चित्रण पराया–सुख कहानी के माध्यम से करने का प्रयास किया है–– उर्मिला (पराया सुख की नायिका) एक शिक्षित नारी है, जो अपने पति के उपेक्षापूर्ण व्यवहार से तग आकर आर्थिक रूप से स्वतत्र होने का निर्णय लेती है। उर्मिला की मुलाकात 'सेठी' से होती है। सेठी एक आधुनिक साधन सम्पन्न पुरुष है जो अपनी उदारता और सज्जनता का सहज ही विश्वास दिलाकर, उर्मिला को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। उर्मिला भी अर्थाभाव के कारण उसके प्रति आकर्षित होती चली जाती है।' कहानी मे कथाकार ने यह दिखाने का प्रयास किया है, कि सेठी द्वारा दी गयी समस्त भौतिक सुख सुविधाओ को प्राप्त कर लेने के पश्चात् उर्मिला सोचती है कि ––"यदि सेठी कल आये और कहे कि मै तुम्हे चाहता हूँ। तो क्या फिर मै फिर न कह सकूँगी ? इसी अर्न्तद्वन्द्व की स्थिति मे फिर वह सोचती है, और इस निष्कर्ष पर पहुँचती है कि –'अपने अभाव की अवस्था मे मेरा कम से कम वजूद तो था, मै निर्णय तो ले सकती थी, किन्तु आज ? स्वतत्र विचारो के पोषक यशपाल ने यह अनुभव किया कि

—'स्त्री की हमेशा ही हार होती है जब उस पर आक्रमण होता है, तब भी और उसको तब भी और अब उसको पनाह दी जाती है तब भी।'' 21

इलाचन्द जोशी

इलाचन्द जोशी के कथा साहित्य मे मानव मन का मनोवैाानिक विश्लेषण एव व्यक्ति के अह को स्पष्ट करने का प्रयास दिखायी देता है। स्त्री पुरुषो से सबधित कहानियो मे भी जोशी जी ने नैतिक पीडा और अपराध भावना की ही विशेषतया अभिव्यक्ति की है। मनोविकारो के जटिल अध्ययन की कोशिश मे इनकी बहुत सी कहानिया रूग्ण–पात्रो की 'केस–हिस्ट्रीज' मात्र बनकर रह गयी है। इनकी कहानियो मे विवाहित स्त्रिया असहाय जीवन जीने को विवश दिखायी देती है।

'चौथे विवाह की पत्नी कहानी की रामेश्वरी का एक बूढे से ब्याह हो जाने के बाद उसका अपना कोई अस्तित्व ही नही रह जाता। अब वह मात्र एक कजूस बुढऊ की चौथी पत्नी' बनकर रह गयी है। पति के जीवित रहने पर भी उसको किसी प्रकार का वैवाहिक सुख नहीं प्राप्त हो पाता है, और उसके मृत्योपरात वैधानिक रूप से उसकी पत्नी होने के कारण वह दीक्षित के धन की स्वामिनी अवश्य बन जाती है, पर एकाएक इतने सारे धन की प्राप्ति पर वह विक्षिप्त सी हो जाती है जिसके परिणामस्वरूप अब सिर्फ रुपयो की थैली खोलना एव बद करना ही उसका जीवन क्रम हो गया है। कहानी मे यह दिखाने का प्रयास किया गया है, कि उसका दाम्पत्य जीवन कुठित, यातनापूर्ण एव

निराशापूर्ण है अनमेल विवाह के कारण अन्तत वह विक्षिप्त भी हो जाती है।

उक्त चर्चित कथाकारो की कुछ प्रमुख कहानियो के कथ्य एव शिल्प विवेचन से स्पष्ट होता है कि स्वातत्रयोत्तर काल मे जो भी परिवर्तन हुए से समयानुसार स्वाभाविक रूप से आये जो कहानी कला के विकास के द्योतक समझे जाते है न कि परम्परा के प्रति विद्रोह। 'प्रेमचन्द' तथा यशपाल' ने एक ओर और जैनेन्द्र तथा 'अज्ञेय ने' दूसरी ओर जिस परम्परा का निर्माण किया था स्वातत्रयोत्तर युग की कहानिया वस्तुत उसका आगे का विकास मानी जाती है।

पाद-टिप्पणी

1 हिन्दी की कालजयी कहानियॉ – स पहाडी पृष्ठ 6
2 "धन्य हो पुत्र कि इसी देह से, यम की पुरी को देख ज्यो के त्यो फिर चले आये। जग मे एक से एक सिद्ध हुए है, पर मै जानता हूँ, कि तुम्हारे गुण को तेज को कोई दशाश भी नही पा सकता है।"
3 सरस्वती हीरक जयती विशेषाक (1900 – 1959) पृ 142
4 वही।
5 सरस्वती हीरक जयती विशेषाक (1900 – 1959) पृ 145
6 मधुरेश – हिन्दी कहानी का विकास – पृष्ठ 36
7 परिवेश की चुनौतियॉ और साहित्य, पृष्ठ 79
8 नवनिधि – 'मर्यादा की वेदी', पृष्ठ 60, 61
9 मानसरोवर भाग – 2, कुसुम पृष्ठ 24

10 लक्ष्मीनारायण लाल – हिन्दी कहानियो की शिल्प–विधि का विकास।

11 मधुरेश – हिन्दी कहानी का विकास पृष्ठ 38

12 सुभद्रा कुमारी चौहान – बिखरे मोती, पृष्ठ 49

13 डॉ परमानद श्रीवास्तव – हिन्दी कहानी रचना प्रक्रिया पृष्ठ 148

14 जैनेन्द्र कुमार – 'समय और हम', दिल्ली – पूर्वोदय प्रकाशन सस्करण 1962, पृष्ठ 628

15 राम प्रकाश दीक्षित – हिन्दी कहानी पृष्ठ 192

16 बच्चन सिह – आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ 183

17 डा परमानन्द श्रीवास्तव – हिन्दी कहानी की रचना–प्रक्रिया पृष्ठ 163

18 डा सुरेश सिन्हा – हिन्दी कहानी का उद्भव एव विकास – पृष्ठ 426

19 बच्चन सिह – आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास – 183

20 यशपाल – मृत्युजय (पिजरे की उडान) पृष्ठ 183

21 यशपाल – पराया सुख (ज्ञानदान) पृष्ठ 63

22 इलाचन्द्र जोशी – मेरी प्रिय कहानिया – पृष्ठ 50

चतुर्थ अध्याय

स्वातंत्र्योत्तर कहानीकार एव उनकी दाम्पत्य जीवन केन्द्रित कहानियों का अध्ययन

(क) **1947 — 1960 तक**

राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, ऊषा प्रियम्बदा, कृष्णा सोबती, मन्नू भडारी

(ख) **1960 — 1980 तक**

दूधनाथ सिह, रवीन्द्र कालिया, मेहरुन्निसा परवेज़, गिरिराज किशोर, कृष्णा बलदेव वैद, रमेश वक्षी, निर्मला अग्रवाल, विष्णु प्रभाकर

(ग) **1980 — 2000 तक**

मृदुला गर्ग, दीप्ति खडेलवाल, दिनेश पालीवाल, मणिका मोहिनी, शशि प्रभा शास्त्री, राजी सेठ

चतुर्थ अध्याय

स्वातंत्र्योत्तर कहानीकार एवं उनकी दाम्पत्य केन्द्रित कहानियों का अध्ययन

द्वितीय महायुद्ध की ऐतिहासिक घटना ने यूरोप का भूगोल ही नही बदला, बल्कि मानवीय मूल्यो मे तेजी से विखराव एव विघटन की प्रक्रिया भी प्रारम्भ की। मानसिक स्तर पर मनुष्य मार्क्स फ्रायड और अस्तित्ववादी दर्शन के कारण परम्परागत मूल्यो से हटकर बुद्धिगत मूल्यो की तलाश मे लग गया। जिस समय देश के 'भाग्य विधाता' सविधान के निर्माण मे जुटे हुए थे, उस समय भारतीय जनमानस चुनौतियो के दौर से गुजर रहा था। पाश्चात्य विचारको – डार्विन, फ्रायड सार्त्र, कामू आदि के आदर्शवाद–विरोधी विचारो का दबाव औसत भारतीय मन पर ही नहीं, बल्कि कहानीकारो की रचना–प्रक्रिया और सोच पर भी दिखाई देने लगा। स्वतत्रता के बाद से लेकर आज तक की कहानी निरतर बदलाओ और विसगतियो से जूझती रही है। स्वतत्रता से पूर्व जो कहानी मात्र कहानी नाम से जानी जाती थी वह आजादी के बाद विभिन्न नामो को धारण करती हुई अपनी विकास यात्रा पर निरन्तर गतिमान है। अध्ययन की सुविधा के लिए इसको नयी कहानी सचेतन कहानी,

अ–कहानी समातर कहानी जनवादी कहानी आदि नाम विद्वानो द्वारा दिये गये।

जिस काल खण्ड की कहानी को नयी कहानी कहकर स्थापित किया गया उसे मोटे तौर पर सन् 1954 से 63 तक की सीमाओ मे बाधा जा सकता है [1] इसके नामकरण पर काफी विवाद रहा है। कुछ लोग इसका श्रेय नामवर सिह को देते है तो कुछ दुष्यत कुमार को। इस सम्बन्ध मे नामवर सिह का यह वक्तव्य ठीक लगता है–– कहानी की चर्चा मे अनायास ही नयी कहानी' शब्द चल पडा है और सुविधानुसार इसका प्रयोग कहानीकारो ने भी किया है और आलोचको ने भी । [2] वस्तुत नयी कहानी का कथ्य और स्वरूप दोनो नये है। 1957 मे इलाहाबाद मे हुए साहित्य सम्मेलन मे डा शिवप्रसाद सिह, मोहन राकेश और हरिशकर परसाई ने अपने–अपने निबन्धो मे 'नयी कहानी नाम का ही प्रयोग किया। विभिन्न तर्कों के आधार पर उपेन्द्रनाथ अश्क, डा इन्द्रनाथ मदान और श्रीकान्त वर्मा ने "नयी कहानी नाम, या तो स्वीकार नही किया या उचित नहीं समझा।

सन् 1957 तक हिन्दी मे 'नयी कहानी' का आन्दोलन अपनी जडे काफी गहराई तक जमा चुका था। मोहन राकेश कमलेश्वर राजेन्द्र यादव, निर्मल वर्मा, अमरकान्त, मार्कण्डेय, शिव प्रसाद सिह, मन्नू भण्डारी, उषा प्रियम्बदा आदि कहानीकार अपनी कहानियो के कारण नये कहानीकार के रूप मे स्थापित हो चुके थे। आजादी के बाद पहली बार इतने सशक्त लेखक एक साथ आए और हिन्दी कहानी की शिथिलता को दूर कर उसे गतिशील बनाया। इन सभी

कहानीकारो ने अपनी कहानियो मे कथ्य और सवेदना के धरातल पर व्यक्ति को उसकी समग्रता मे देखने का प्रयास किया।

नयी कहानी के आत्मपरक और व्यक्तिवादी रुझान के विरोध मे महीप सिह ने 'सचेतन कहानी' की अवधारणा को आन्दोलन के रूप मे प्रस्तुत किया। उन्होने नयी कहानी के प्रतीक–विधान और साकेतिकता को आयातित मानकर इसकी कटु आलोचना करते हुए इसे खारिज कर दिया। अपनी पत्रिका सचेतना के माध्यम से उन्होने इस आन्दोलन का कुछ दिनो तक चर्चा मे बनाए रखा लेकिन किसी एक पत्रिका के सहारे यह आन्दोलन दीर्घजीवी नही हो सका। सचेतन कहानी के चर्चित लेखको मे महीप सिह कुलभूषण, धर्मेन्द्र गुप्त और मनहर चौहान प्रमुख थे।

हिन्दी मे साठोत्तरी कविता की तरह उस समय की कहानी को भी 'अ–कहानी' नाम दिया गया। इसका मूल स्वर विरोध और निषेध का है। अ–कहानी प्रचलित मूल्यो एव सामाजिक मान्यताओ के प्रति व्यापक विद्रोह और विद्वेष की कहानी है। जीवन की अनगढता को उसके वास्तविक और मूलरूप मे प्रस्तुत करने के आग्रह के कारण अकहानी के लेखक बिम्बो और प्रतीको का तिरस्कार करके सीधे और सरल शब्दो मे अपनी बात कहते है। 'गगा प्रसाद विमल और 'रवीन्द्र कालिया' इस आन्दोलन के मुख प्रवक्ता रहे हैं। इस आन्दोलन का पूरा जोर प्रचलित और स्थापित मूल्यो के अस्वीकार और निषेध पर रहा है।

इन विभिन्न कहानी आन्दोलनो ने जहॉ एक तरफ कहानी के धरातल पर पर्याप्त रचनात्मक सक्रियता और गतिशीलता का माहौल

बनाया वही दूसरी तरफ इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि छोटे छोटे आन्दोलनो और खॉचो मे बॅटकर कहानी अपने मूल गन्तव्य से भटक गयी। जो लोग इन आन्दोलनो मे शामिल थे वे साधारण और सतही कहानियॉ लिखकर भी चर्चा मे बने रहे लेकिन बहुत से ऐसे लेखक भी थे जो इन आन्दोलनो के बाहर रहकर भी सार्थक और महत्वपूर्ण लेखन कर रहे थे। नयी कहानी आन्दोलन के दौर मे ही अनेक सम्भावना शील लेखक उपेक्षा के गर्त मे खो गये। जो अपनी जिद पर अडे रहे उन्हे स्वतत्र लेखक के रूप मे ही पहचाना गया।

समातर कहानी आन्दोलन की शुरुआत आठवे दशक के प्रारम्भ मे 'सारिका [3] पत्रिका से हुई। इसके सम्पादक कमलेश्वर ने आन्दोलनो और 'वादो से तग आ चुके लेखको को काफी प्रभावित किया। यह समातर पीढियो और समान्तर सोच की कहानी थी। चूॅकि सारिका' एक बडे पूजीवादी घराने की पत्रिका थी इसलिए इस आन्दोलन से लेखको की एक बडी जमात को जोडने मे उसे कोई मसक्कत नहीं करनी पडी। समातर कहानी के प्रमुख लेखको मे से रा यात्री, मेहरुनिसा परवेज, जितेन्द्र भाटिया, मधुकर सिह दामोदर सदन निरुपमा सेवती, सुधा अरोडा आदि प्रमुख थे।

विभिन्न आन्दोलनो और वादो के माध्यम से विकसित होती हिन्दी कहानी का समकालीन परिदृश्य काफी उत्साहवर्धक और सन्तोषजनक है। आम आदमी के सुख–दुख आशा–आकाक्षा को मुखरित करने के साथ ही आज की कहानी वर्तमान राजनीतिक विद्रूपताओ को भी बेबाकी से व्यक्त कर रही है। उपरोक्त पक्तियो मे स्वातत्रयोत्तर कहानी की विकास यात्रा पर सक्षिप्त प्रकाश डाला

गया है। आगे के पृष्ठो मे स्वातत्रयोत्तर कहानीकारो के दाम्पत्य–जीवन से सबधित कहानियो का आलोचनात्मक कथ्य प्रस्तुत किया गया है।

राजेन्द्र यादव

प्रगतिवाद के उत्कर्ष काल मे राजेन्द्र जी की कहानिया प्रकाशित हुयी। राजेन्द्र यादव ने अपनी कहानियो मे मुख्यत मध्यवर्गीय समाज का ही चित्रण किया गया है। राजेन्द्र यादव के अनुसार मात्र मनोरजन मेरी दृष्टि मे कहानी का लक्ष्य कभी नही रहा है। वह भाव, विचार और अनुभूति को व्यजित करने का साधन है जो अपनी (कला की) सीमाओ मे आबद्ध है।'[4] राजेन्द्र यादव ने स्त्री–पुरुष सम्बन्धो (दाम्पत्य) पर आधारित बहुत सी कहानिया लिखी जिनमे प्रेम की अशरीरी धारणा के प्रतिवाद से लेकर सबधो के टूटने की पीडा तक की कहानियॉ दिखायी देती है। इस टूटने की प्रक्रिया को इनके 'टूटना' कहानी मे देखा जा सकता है।

टूटना' कहानी मे दो विभिन्न वर्गों की मानसिकता का टकराव एव अह ही परिवार टूटने का कारण बनता है। किशोर को पुरुष होने के कारण अपनी श्रेष्ठता बोध का अह है, तो दूसरी तरफ लीना बडे बाप की बेटी होने के कारण अपने को कम नही समझती, जिसकी वजह से उनका दाम्पत्य जीवन बिखर जाता है। 'किशोर एक लेक्चरर है, वह हमेशा लीना के पिता (दीक्षित) से भयभीत रहता है—उनके धन रूआब एव व्यवहार से। लीना सहज भ।व से बार–बार अपने पति किशोर के उच्चारण को, पहनावे को एव आधुनिक ज्ञान को ठीक करना चाहती है, क्योकि ये सब बाते

उसको हमेशा खटकती रहती है तो किशोर झल्ला उठता है और उसके वर्ग सस्कार उसे अन्यथा ले लेते है जिसके कारण वह हीन भावना से ग्रसित हो जाता है। एक अप्रत्यक्ष और अदृश्य रूप से लडी गयी यह लडाई भयकर हो जाती है जो उनके दाम्पत्य जीवन को झकझोर कर रख देती है। इसी स्थिति का विश्लेषण टूटना' कहानी मे हुआ है। आठ वर्ष को खोकर अब लीना की ओर से समझौते का सकेत मिलने पर किशोर के अदर भी एक अनुकूल प्रतिक्रिया उठती है जिसके फलस्वरूप वह अपना दिल्ली जाना स्थगित कर देता है यह इस बात का सकेत है, कि वह स्वय भी टूटने की इस भयावह स्थिति से बचाव चाहता है।

इसी प्रकार इनकी बहुचर्चित कहानी छोटे–छोटे ताजमहल मे प्रणय तथा परिणय के बिखराव को व्यक्त किया गया है। कहानी मे स्त्री–पुरुष के तनाव तथा उससे उत्पन्न दुराव की स्थिति का चित्रण हुआ है। कहानी का प्रारभ ही सम्पूर्ण कहानी के गर्म को अपने मे समेटे हुए है, जो इस प्रकार है[5]— मिलने से पहले ऐसा आभास होता है, कि कोई बहुत जरूरी विषय है जिस पर दोनो को बात करनी है, परन्तु मिलने पर वह बात न मीरा ने उठाई और न खुद विजय ने। उस बात को वे दोनो ही उसी क्षण की आशका मे टालते रहे, और बात गले तक आकर रह गयी कि एक बार फिर मीरा से पूछे कि क्या अपने परिचय को हम स्थायी रूप नहीं दे सकते ?—लेकिन फिर पहले की तरह उसे बुरा न लगे? उसके बाद दोनो के बीच कितना खिचाव और दुराव उत्पन्न हो गया था। ये सब ताजमहल की छाया मे सम्पन्न हुआ था, जहा वे

दोनो बिना एक दूसरे से कुछ कहे लौट आये थे। कथ्य की सघनता एव उसमे स्थित दुराव एव तनाव की स्पष्टता की दृष्टि से कहानी के अन्दर दूसरी कहानी को भी बुना गया है—मिस्टर देव एव राका की कहानी को। जिस तरह अपने विवाह की छठवी वर्षगाठ पर दोनो सबध विच्छेद करते है वह विजय को ही नही सबको आश्चर्य मे ढाल देता है। पति—पत्नी के बीच का तनाव उस हद तक पहुँच चुका है, जहाँ से सबधहीनता का दौर शुरू होता है इस स्थिति मे उनका अलग होने का निर्णय लेना बुद्धिमत्तापूर्ण प्रतीत होता है। कहानी की नायिका 'राका' अपने पति से कहती है[6] "दोनो तरफ से सहने की शायद हद हो गयी है नसो का तनाव मुझे पागल, या कोई ऐसी वैसी बेहूदगी करने पर मजबूर करे, इससे तो अच्छा हो कि दोनो अलग हो जाय। चाहे तो किसी के साथ शेटिल हो जाय।" इसके लिए उनको ताजमहल से उपयुक्त दूसरी जगह नही लगी, जिसकी छाया मे उन्होने हनीमून मनाने के लिए सोचा था। यादव जी दाम्पत्य जीवन के सदर्भ मे मूल्यो के विघटन को प्राय दर्द या तकलीफ के साथ नहीं आकते। अनिवार्य परिवर्तन के प्रति उनकी दृष्टि आलोचनात्मक यथार्थवादी कलाकार की है। राजेन्द्र यादव की कुछ कहानियो मे तीसरे आदमी की उपस्थिति सशरीर है, या फिर उसके होने का सदेह जहर बनकर नसो मे घुलता रहता है। 'पुराने नाले पर नया फ्लैट' कहानी इसी प्रकार के भावो को व्यक्त करती है। कहानी मे नये और पुराने के द्वन्द्व के माध्यम से पत्नी के पुरातन सस्कारो से मुक्त न होने, तथा पति के अपेक्षाकृत आधुनिक होने के कारण उत्पन्न द्वन्द्व का बखूबी चित्रण किया गया है। कहानी मे पुराना

नाला वीरू के पति का पूर्व प्रेम है जो दीप्ति' की चिटिठयो के माध्यम से बना हुआ है एव नया फ्लैट उनके अपने सबधो का है जो कॉलोनी मे नये मकान की तरह हवा के हर झोके के साथ बदबू का भभका साथ लिये है। पति के लिए किसी अन्य पत्नी के लिए सब अकल्पनीय है वह कहती है कि[7] किसी पुरुष से पति–पत्नी के काम–सबध के अलावा प्रेयसी प्रेमी का रिश्ता नही हो सकता। फलत वह अन्दर ही अन्दर खोखली होती चली जाती है, कि 24 घटे उसके साथ एक ही छत के नीचे रहने वाला पति ही अपना नही है। अपनी इस अनुभूति के लिए कोई नाम या अर्थ तलाश पाने मे वह असफल रहती है।

मोहन राकेश

मोहन राकेश' का कथा–लेखन हिन्दी कहानी के उस नये दौर का सूचक है, जहॉ कहानी के केन्द्र मे केवल व्यक्ति की प्रतिष्ठा ही नहीं, अपितु सामाजिक शक्तियो का समाहार होता दिखायी देता है। राकेश यह स्वय स्वीकार करते है कि—'उनकी रचना दृष्टि का सीधा सबध, आस–पास जिये जा रहे जीवन के साथ तथा इस जीवन की विडबनाओ और विभ्रमो को झेलते हुए व्यक्ति के साथ है उनका लेखक व्यक्ति को भी आसपास के प्रभावो से अलग एक कटी हुयी इकाई के रूप मे नहीं देखता, बल्कि समस्त सपूर्ण–मानसिक, सामाजिक–राजनीतिक परिवेश को उसका अविभाज्य अग समझता है। व्यक्ति और उसके परिवेश के अदर से ही सवेदना और व्यग्य के सूत्र उठाकर वह उन्हे कथाखडो मे बुन देता है।"[8]

मोहन राकेश की अधिकाश कहानियॉ स्त्री–पुरुष सबधो पर ही आधारित दिखायी देती है। जिसमे स्त्री–पुरुष को अलग–अलग इकाई मानते हुए उनकी लक्ष्यहीनता, हताशा, कुठा तनाव और निर्णयहीनता से उत्पन्न विक्षोभ का चित्रण हुआ है। इनकी खाली कहानी इसी प्रकार के भाव को प्रदर्शित करती है। खाली कहानी मे अकेलेपन की गहन अनुभूति का चित्रण है। यह अकेलापन कुछ विशिष्ट स्थितियो के कारण अन्दर और बाहर दोनो जगह विद्यमान है। कहानी मे तोषी और युगल के दाम्पत्य जीवन मे बढने वाले तनाव का कोई सामाजिक कारण नही है फिर भी, शादी के आठ वर्षो मे ही तोषी के जीवन मे ऐसा खालीपन छा जाता है कि वह जुगल की खुशी तक को बर्दाश्त नही कर पाती। उसकी खुशी की कल्पना मात्र मे ही, तोषी को अपनी पराजय बोध का अहसास होने लगता है। फलस्वरूप 'पति–पत्नी एक साथ रहकर भी कुछ प्राप्त नही कर पाते और उनका जीवन अधूरा ही रह जाता है।

मोहन राकेश की बहुचर्चित कहानी एक और जिन्दगी दो व्यक्तित्वो के अह के टकराव और फलस्वरूप बिखर जाने की कहानी है। 'बीना' और 'प्रकाश' के सबध–विच्छेद होने का कोई मूल कारण नहीं है। पति–पत्नी वैयक्तिक स्वतत्रता के पक्षपाती होने के कारण एक दूसरे के सामने झुकना नहीं चाहते। 'बीना आर्थिक रूप से प्रकाश की अपेक्षा सुदृढ होने के कारण अपने पति से सबध तोडने का साहस कर लेती है, और अपने अधिकार के लिए सुप्रीम कोर्ट तक लडने का साहस रखती है। इस सबध मे 'बीना अपने पति से कहती है,—' फिजूल की हुज्जत मे कुछ नहीं रखा

है। बच्चे–अच्चे तो होते ही रहते है। तुम सबध विच्छेद करके फिर से ब्याह कर लो तो घर मे बच्चे ही बच्चे हो जायेगे। समझ लेना कि इस बच्चे के साथ कोई दुर्घटना हो गयी थी। [9] मॉ–बाप के इस कारणहीन लडाई मे उनका बच्चा पलाश यूँ ही यातना झेलता रहता है। प्रकाश की पहली पत्नी अहवादी प्रकृति की थी और दूसरी पत्नी निर्मला मानसिक रोग से ग्रस्त। इस निर्णय से उत्पन्न तनाव को स्वय अकेले ही झेलने के कारण इस अकेलेपन और मानसिक सत्रास मे उसका जिदगी से ऐसा मोहभग हुआ, कि सब कुछ निस्सार प्रतीत होने लगा। डॉ बच्चन सिह के अनुसार — 'एक और जिन्दगी'', आज के ट्रेजिक तनाव को पूरी गहराई मे आकती है, जहॉ मनुष्य न तो छूटी हुयी जिन्दगी को छोड पाता है और न चुनी हुयी, जिन्दगी को अपना सकता है। दोनो ओर खीचा जाकर वह क्षत–विक्षत हो जाता है।'' [10]

उषा प्रियंबदा

अपनी समकालीन कथा लेखिकाओ की तुलना मे उषा प्रियवदा का रचना ससार एव उनके सरोकार काफी सीमित है। वे मूलत व्यष्टिबोध के पक्ष मे लिखने वाली आधुनिकता–बोध की कहानीकार हैं। ''उनकी कहानियॉ न तो सामाजिक सन्दर्भो से जुडकर व्यवस्था के शोषक रूप का उद्‌घाटन करती है, न ही सक्रमणशील समाज मे स्त्री की आत्म सजगता को चित्रित करती हैं। उनकी कहानियॉ सामाजिक वर्जनाओ और जीवन की निषेधवादी दृष्टि का प्रत्याख्यान करती है। [11] उनकी नायिकाये दैहिक पवित्रता का मिथ तोडती है। पति–पत्नी के सम्बन्धो को लेकर लिखी गयी उनकी कहानियो मे

वापसी दृष्टिदोष तथा कितना बडा झूठ प्रमुख है।

वापसी[12] आधुनिक जीवन मे पारिवारिक विश्रृखलता को लेकर लिखी गयी एक सहज यथार्थ और मार्मिक कहानी है। कहानी के नायक गजाधर बाबू का अकेलापन आधुनिक जीवन के बीच उभरता हुआ विवश अकेलापन है जिसे चुनने के लिए वह बाध्य हैं। पैतीस साल तक रेलवे की नौकरी करके रिटायर होकर घर आने पर वह अपने सयुक्त परिवार मे जिस स्थिति का सामना करते है वह अत्यत त्रासद एव करुण है। लम्बे समय तक घर से बाहर रहने के कारण घर के लोग उन्हे भूल चुके थे। जबकि वे स्वय बरसो की निर्वासित जिन्दगी जीने के बाद पारिवारिक सुख की कामना मे घर लौटते हुए, कितने ही सुखो की कल्पना कर रहे थे किन्तु शीघ्र ही इस सारी स्थिति से उनका मोह भग हो गया। घर मे बच्चे तो क्या, उनकी पत्नी भी उनका साथ नहीं देती। सारी उम्र परिवार के भरण–पोषण के लिए विवश अकेला जीवन जीने के बाद घर लौटने पर उन्हे एक दिन भी अपनापन नही मिला और वे पुन दूसरी नौकरी पर घर से बाहर जाने के लिए विवश है। दुबारा नौकरी पर चले जाने के बाद, उनकी पत्नी की प्रतिक्रिया उनके प्रति, एक गहन अलगाव बोध को उजागर करती है। कमरे मे पडी, व्यर्थ की जगह घेरने वाली 'गजाधर बाबू की चारपाई को, नरेन्द्र' से बाहर निकालने को कहकर जैसे वह गजाधर बाबू को,—अपने उस पति को जिसके साथ उनका पैतीस वर्षो का नाता है——पूरी तरह से फालतू और अवाक्षित बना देती है। 'गजाधर बाबू' की घर से मोह भग की यह तीक्ष्ण अनुभूति एक विस्तृत व्यापक

परिप्रेक्ष्य मे मानवीय सकट को उजागर करती है। यह समस्या अकेले गजाधर बाबू' की न होकर एक पूरी पीढी की मुकम्मल समस्या है जिसे झेलने के लिए गजाधर बाबू जैसे बुजुर्ग अभिशप्त है।

कितना बडा झूठ [12] पति और प्रेमी दोनो को एक साथ चाहने की कहानी है। कहानी की नायिका 'प्रो किरन विवाहित होने के साथ साथ दो बच्चो की मॉ भी है। अपने पति– विश्वेश्वर' से पूर्णतया सतुष्ट न होने के कारण वह प्रेमी मैक्स से शारीरिक सम्बन्ध बनाती है। 'मैक्स को मन ही मन चाहकर वह मानो अपने पति— विश्वेश्वर के साथ एक धोखा कर रही थी या स्वय को ही झूठला रही थी। 'मैक्स और वारिया' की शादी ने प्रभावित कर दिया कि, वह कितना बडा झूठ जी रही थी। दोनो धरातलो पर पति के साथ भी और प्रेमी के साथ भी। जब उसे वास्तविकता का पता चलता है, तो वह पति से जल्दी विस्तर पर चलने का आग्रह करके मानो मैक्स को पूरी तरह भूल जाना चाहती है। कुल मिलाकर इस प्यार के खेल मे, किरन' की समस्या पूर्णतया व्यक्तिगत है, जो दिन रात उसे भीतर ही भीतर सालती रहती है।

'दृष्टि–दोष' [13] मूल्यो के आग्रह की कहानी है। जिसमे शिक्षित कार्यशील पत्नी की अपने पति से भिन्न सोच एव जीवन पद्धति होने के कारण मानसिक दुराव उत्पन्न हो जाता है। चन्द्रा का विवाह आई ए एस अधिकारी 'साम्ब' से हो जाता है लेकिन वह अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियो तथा पति दोनो से कटी–कटी रहती है। एक बच्चा होने के बावजूद दोनो के बीच की खाई कम नही

होती। लेकिन जब अपनी ही सहेली कचन से उसे पता चलता है कि उसके पति साम्ब उसे बहुत चाहते है तो उसके अवचेतन मन पर वर्षों से पडी हुई बर्फ पिघल जाती है। साम्ब का अपनी पत्नी के प्रति रागात्मक निष्ठा का भाव चन्द्रा को फिर उसके पास ले आता है, क्योकि प्यार की मधुरता ने उसका दृष्टि दोष मिटा दिया है।[14] यह कहानी पति–पत्नी के पूर्वाग्रह और भिन्न सोच की कहानी है, जिसमे सोच परिवर्तित होते ही सौन्दर्य तथा चाहत के प्रतिमान अपने आप बदल जाते है।

कृष्णा सोबती

हिन्दी कहानी–साहित्य मे गुलेरी' के पश्चात कृष्णा सोबती हो एक मात्र ऐसी लेखिका है, जिन्होने परिमाण मे काफी कम कहानियॉ लिखकर भी नयी–कहानी आदोलन मे अपनी विशेष पहचान कायम की। इन्होने आधुनिक बोध को अपनी कहानियो मे यथार्थ रूप से अभिव्यक्ति दी है। इनकी कहानियो मे प्रेम, वासना वात्सल्य, जीवन की घुटन, व्यक्ति तथा समाज के परस्पर सबध आदि विभिन्न आयामो को देखा जा सकता है। मधुरेश के शब्दो मे—'ऐसा नही है, कि 'कृष्णा सोबती' के अपने अनुभव और आग्रह, उनकी कहानियो मे न हो। लेकिन उन्हे लेकर, उनके जीवन प्रसगो मे प्रवेश की वैसी छूट नही मिलती जैसी उस दौर के अन्य बहुत से लेखको के साथ सहज ही मिल जाती है। उनकी कहानिया उनके अनुभव का ताप सजोये रखने पर भी, उन्हे आत्मवृत्तात के रूप मे लिखे जाने की छूट प्राय नहीं देती।''[15]

कृष्णा सोबती की बहुचर्चित कहानी 'मित्रो मरजानी' मे 'मित्रो'

का चरित्र पाठको ही नही कहानी के आलोचको के बीच भी विवादास्पद रहा है। इसके सबध मे कहा जाता है कि— यह न तो रवीन्द्र की ओस जैसी नारी है न शरत या जैनेन्द्र की विद्रोहिणी गुत्थी। इसे आदर्श का कोई मोह नही है न समाज का भय न ईश्वर का। इसके लिए किसी विश्लेषण की आवश्यकता नही है। यह मात्र मास सज्जा से बनी स्त्री है जिसमे स्नेह भी है ममता भी है, मॉ बनने की हौस भी और एक अविरल बहती वासना सरिता भी।' [19]

'मित्रो' अपनी दैहिक आवश्यकताओ के लिए, पर पुरुष से भी सबध बनाने मे नही हिचकती और अपने जीवन की सार्थकता काम तृप्ति मे ही समझती है। उसका पति इसी कारण उसको फरेबन कहता है। 'मित्रो अपने हसमुख शोख एव स्पष्टवादी आचरण के द्वारा, अपनी आत्मपीडा व्यक्त करते हुए कहती है— 'मै इसीलिए नहीं सुहाती न कि अग–अग से पूरी हूँ। जब जिठानी के पॉव भारी होने की खबर, उसकी सास उसके ससुर को बताती है, तो मित्रो अपने से सवाल करते हुए कहती है—'जिदजान का यह कैसा व्यापार ? अपने लडके बीच डाले तो पुन्य, दूजे डाले तो कुकर्म ? उसकी सास उसको अर्न्तद्वन्द्व मे देखकर ढाढस बधाती हुयी कहती है— दाते की दरगाह मे देर है, अधेर नहीं।' तो मित्रो पलटकर मसखरी के साथ पूछती है—'अम्भा दाते को किसने देखा है ? असल दाते तो तुम्हारे बेटे ठहरे, जब चाहे पौध रोप दे।' [17] अत कहा जा सकता है कि एक स्त्री के रूप मे देखने पर मित्रो का दाम्पत्य जीवन बहुत सुखी नहीं दिखायी देता है। उसके मन मे

पीडा है–पति द्वारा उपेक्षित होने की स्वय मा न बन पाने की।

'एक दिन एक ऐसी परित्यक्ता पत्नी की कहानी है जिसका पति दूसरी लडकी से शादी कर लेता है। अपने सारे रोमानी और भावुक मिजाज के बावजूद यह कहानी इस तथ्य को नये सिरे से उद्घाटित करती है कि तन का धर्म मन के धर्म से अलग नही होता। कहानी की नायिका 'शीला पतिगृह मे रहते हुए भी उसके सानिध्य और प्यार से पूरी तरह वचित है। दो साल के अन्तराल के बाद एक दिन उसकी सपत्नी अपने मायके चली जाती है तो उसका पति उसके कमरे मे आकर उसके सारे गिले शिकवे दूर करता है। कुल मिलाकर यह कहानी टूटे हुए दाम्पत्य सम्बन्धो के पुनर्जीवन की कहानी है। लम्बे अन्तराल के बाद शीला का अपने पति से पुनर्मिलन कहानी को सुखान्त बनाा देता है।

मन्नू भंडारी

स्वातत्र्योत्तर कहानीकारो मे 'मन्नू भण्डारी' अकेली लेखिका है, जो अपने समय सन्दर्भो के प्रति एक खुली दृष्टि लेकर हिन्दी कथा साहित्य मे अवतरित हुई। पूजीवादी समाज मे तेजी से उभरते हुए नव धनाढ्य वर्ग की मूल्यमूढता के सकेत उनकी अनेक कहानियो मे उपलब्ध है। "उनकी कहानियॉ एक सुनिश्चित क्रम मे, वर्तमान व्यवस्था के अन्तर्विरोधो की गहराई मे जाकर उद्घाटित करती है और ह्रासशील मूल्यो के सार्थक सकेत देती है।[18] अपनी कहानियो मे 'मन्नू भण्डारी' ने पर्याप्त सयत ढग से एक ऐसी नारी गढने की कोशिश की है, जो क्रमश एक जीवन्त और आत्म सजग स्त्री के रूप मे विकसित होती है, और जो अर्थहीन विधि निषेधो के लिए

जीवन नष्ट करने की अपेक्षा अपना जीवन अपने ढग से जीना चाहती है।

ऊँचाई [19] मन्नू जी की बहुचर्चित दाम्पत्य आधारित कहानी है। इसमे मूल्य सघर्ष का कारण है नारी की शारीरिक पवित्रता सम्बन्धी वह परम्परागत धारणा जिसका भारतीय समाज मे प्रारम्भ से हो विशेष महत्व रहा है। कहानी की नायिका शिवानी शादी से पहले जिस प्रेमी अतुल से शारीरिक सम्बध स्थापित नही कर पायी थी, उसी प्रेमी से वह शादी के बाद शारीरिक सम्बन्ध स्थापित कर आती है, लेकिन उसे अपने इस कृत्य पर रत्ती भर भी ग्लानि नही होती, क्योकि वह समझती है कि जिस मानसिक यत्रणा की स्थिति मे वह थी, उस दशा मे अपना शरीर प्रेमी को न सौपने पर उसे बेहद कष्ट होता। पति के पूछने पर, वह निसकोच इसे स्वीकार कर लेती है और कहती है—"मेरे जीवन मे तुम्हारा जो स्थान है उसे कोई नही ले सकता, लेना तो दूर उस तक कोई पहुँच भी नहीं सकता। किसी के जितनी भी निकट चली जाऊँ, चाहे शारीरिक सम्बन्ध भी स्थापित कर लूँ, पर मन की जिस ऊँचाई पर तुम्हे बैठा रक्खा है, वहाँ कोई नही आ सकता।' [19] इतनी सी बात सुनकर पति अपना तमाम क्रोध ठडा कर लेता है। क्रोध शान्त होते ही तमाम शिकायते भी दूर हो जाती है।

'बन्द दराजो का साथ [20] कहानी का कथानक सीधा एव सरल होने के बावजूद अभिव्यक्ति का ढग उसे दुर्बोध बनाता है। 'विपिन' और 'मजरी' सुखी दाम्पत्य जीवनयापन कर रहे है। एक दिन विपिन की मेज की दराज से मजरी एक स्त्री और बच्चे की

तस्वीर और कुछ पत्रो को प्राप्त करती है फलस्वरुप उसके और विपिन के बीच दुराव की परिणति तलाक मे होती है। तीन वर्ष तक एकाकी जीवन जीने के बाद, अपने एक परिचित दिलीप से वह विवाह कर लेती है। लेकिन एक दिन असित के होस्टल व्यय पर दिलीप' द्वारा स्वाभिमान की बात कह देने पर वह उससे भी खिची–खिची रहने लगती है। कहानी का कथ्य केवल इतना ही है कि, कुछ बाते गोपनीय रखकर जीने वाला व्यक्ति किस प्रकार अपने साथी को भी टुकडो मे बाट कर जीने के लिए मजबूर कर देता है। 'मजरी की यह नियति उसकी अपनी बनायी हुई है। इसलिए पाठक को उससे कोई सहानुभूति नही होती। जिन्दगी को टुकडो मे बाटने की यत्रणा का अहसास, लेखिका की अनुभूति को प्रामाणिक बना सकता था पर मन्नू जी की भाषिक सरचना के प्रति सजगता के कारण ऐसा नहीं हो सका है।

'कील और कसक[21] दमित यौन लालसाओ की कहानी है। कहानी की नायिका 'रानी' का पति कैलाश' कुरूप होने के साथ–साथ ऋणमुक्त होने के लिए, अपने प्रेस के कार्य मे इतना रमा हुआ है कि, नयी नवेली पत्नी की ओर इसकी रूचि नही रह पाती। विवाह की पहली रात से ही 'रानी' अपने को उपेक्षित महसूस करने लगती है। जो सानिध्य और अपनापन उसे अपने पति से नही मिल पाता उसे, वह अपने घर मे भोजन करने वाले अविवाहित युवक 'शेखर' मे पाती है। दोनो का लगाव आपस मे पर्याप्त निकटता उत्पन्न कर देता है। इसी बीच 'शेखर' का विवाह हो जाता है, जिससे 'रानी' के मन मे 'शेखर' की पत्नी के प्रति

ईर्ष्या उत्पन्न हो जाती है जो दैनिक झगडे का रूप ले लेती है। इस झगडे से छुटकारा पाने के लिए कैलाश घर बदल लेता है। शेखर से नित्य प्रति झगडा करने वाली रानी' उससे दूर होने से बुरी तरह अव्यवस्थित हो जाती है। जाते समय भी उसके मन मे शेखर को एक बार देखने की चाह पूरी नहीं हो पाती। तागे पर बैठते समय रानी' को, तागे की कील लग जाती है जिससे उसकी ऑख मे ऑसू आ जाते है। कैलाश सोचता है, कि ऑसू कील की चोट से है लेकिन चोट कील से ज्यादा कसक की है वह कसक जो एक प्रेमी को छोडते हुए अविरल अश्रुधारा के रूप मे बह निकलती है।

'ए खाने आकाश नाई'[22] मे गाव के मध्यमवर्गीय परिवार की जिन्दगी चित्रित की गयी है। इस कहानी पर वासु चटर्जी के निर्देशन मे 'जीना यहॉ' नाम से फिल्म भी बनी है। यह आर्थिक रूप से सम्पन्न एक ऐसे दम्पत्ति की कहानी है जो चाहकर भी स्वतत्र जीवन यापन नहीं कर सकते। सयुक्त परिवार का भार उनके कधो पर है—परिवार के प्रति उत्तर दायित्वो से वे विमुख नही हो सकते। कहानी की नायिका 'लेखा गॉव के खुले वातावरण मे रहने के लिए अपने गॉव जाती है ताकि प्राकृतिक परिवेश मे कलकत्ता महानगर की आपा धापी वाली जिन्दगी से अलग रहकर, कुछ दिन आराम कर सके। किन्तु वहॉ पहुँच कर उसे आभास होता है, कि गॉव का जीवन अधिक घुटनमय हो गया है। मध्यमवर्गीय परिवार की सारी सकीर्णताऍ, झगडे, अभाव और रिश्ते उसे उबाने लगते है। घर के पीछे सडता हुआ पोखर, उठती हुई

बदबू, सडते हुए पारिवारिक जीवन की दुर्गन्ध का ही प्रतीकात्मक ढग से व्यक्त करते है। जल्द ही इस वातावरण से तग आकर वह अपने पति दिनेश को पत्र लिखती है कि वह जल्दी से आकर उसे कलकत्ता लिवा ले चले। कहानी के प्रारम्भ मे एक दूसरी कहानी भी इसमे चलती है जो शायद न होती तो इस कहानी का शिल्प और भी सुगठित और सहज होता।

दूधनाथ सिह

एक कहानीकार के रूप मे 'दूधनाथ सिह' की चर्चा अकहानी आन्दोलन से पहले ही होने लगी थी। उनकी अधिकाश प्रारम्भिक कहानियॉ जटिल बुनावट एव सश्लिष्ट प्रतीक विधान की उदाहरण है। उनकी कहानियॉ सामाजिक विसगतियो और पारिवारिक विद्रूपताओ को निहायत सच्चाई के साथ बेबाक तरीके से व्यक्त करती है। दाम्पत्य जीवन के उतार–चढाव और पति–पत्नी के व्यक्तिगत सबधो को उद्घाटित करने वाली अनेक कहानियॉ उनके यहॉ देखी जा सकती है।

'रीछ'–'दूधनाथ सिह' की बहुचर्चित कहानी है। मधुरेश ने लिखा है, कि "इस कहानी के जितने भाष्य उपलब्ध है उतने कहानी के तो क्या शायद किसी कविता के भी नहीं होगे।[23] इसमे यौनाचार का अतिशय स्वच्छन्द ग्रहण है। भारतीय समाज मे यौन सम्बन्धो का इतना उन्मुक्त वर्णन करने की इजाजत भारतीय मूल्य आज भी नहीं देते। कहानी का नायक अपनी पत्नी को अपने प्रेमिका के साथ स्थापित किए गये यौन सम्बन्धो की कथा सुनाकर स्वय उस स्मृति यत्रणा से मुक्त होना चाहता है परन्तु पत्नी का

व्यवहार ऐसा है कि वह उससे अपनी बात कह नही पाता। प्रेमिका के साथ स्थापित सम्बन्ध पत्नी के सामने प्रकट हो गये तो शायद यह उसे कभी माफ न करे यहीं डर उसे रीछ की तरह हमेशा भयाक्रान्त किए रहता है। इस कहानी मे दूधनाथ सिह स्त्री–पुरुष के काम सम्बन्धो मे स्थापित नैतिक मूल्यो को भजित कर यौन वर्णन के प्रति एक सहज–दृष्टि का परिचय दिया है।

'दिनचर्या'[24] कहानी आधुनिकता के नये सन्दर्भों को आत्मसात् करने का एक ईमानदार प्रयत्न है। यह एक ऐसे पति–पत्नी की कहानी है, जहॉ पति–दो बच्चो का बाप होने के बावजूद अपनी पत्नी मे, शादी के पहले वाला प्यार और समर्पण चाहता है। शरीर ढलने के साथ पत्नी उसे अत्यत भद्दी थुलथुल और अनाकर्षक लगने लगती है। पत्नी के तरफ से उत्पन्न विकर्षण की पूर्ति कथानायक निदेशक की कमसिन लडकी से प्यार करके पूरी करना चाहता है। कुल मिलाकर यह समूचे मध्यमवर्गीय मानसिकता की कहानी है जहॉ पति को पत्नी के अतिरिक्त हर लडकी सुन्दर तथा आकर्षक लगती है।

मेहरून्निसा परवेज

आधुनिक नारी मे व्यक्तित्व की स्वतत्र सत्ता स्थापित करने के प्रति जो छटपटाहट है, वह मेहरून्निसा परवेज की कहानियो का मूल बिन्दु है। उनकी कहानियॉ नारी मनोभावो, एव स्त्री–पुरुष की महत्वाकाक्षा के द्वन्द्व से उत्पन्न जटिलताओ को वखूबी उभारती है। नारी स्वातत्रय की प्रबल पक्षधर 'परवेज' ने लिखा है—"मैने अपनी कलम से नारी की व्यथा लिखी है, बदले मे मुझे क्या मिला ?

गिरिराज किशोर

'गिरिराज किशोर' की कहानियाँ मूलत निम्न मध्यवर्गीय अनिर्णय के शिकार व्यक्तियो के मानसिक द्वन्द्व का चित्रण करती है। इस तबके के अन्तर्विरोध और विसगतियो को चित्रित करने वाली उनकी प्रमुख कहानी "फ्राक वाला घोडा निकर वाला साईस[28] अपने पौरुष एव स्वाभिमान को परे रखकर, अपने से उच्च पदवाली पत्नी के प्रति नतमस्तक एक ऐसे पुरुष की कहानी है जो पत्नी की हर अच्छी–बुरी बात, सिर झुका कर स्वीकार कर लेता है। साधारण 'क्लर्क की 'डिप्टी सेक्रेटरी' पत्नी रीता उसे जाहिल तथा गवार समझती है तथा अपने को उससे अधिक स्वतत्रता की हकदार समझती है। अपने प्रेमी 'नागरथ' के साथ हमबिस्तर होने मे उसे कोई ग्लानि तथा पछतावा नही होता। इस कहानी मे पति एक महत्वहीन, महज औपचारिक तथा निष्प्राण आकृति मात्र बन कर रह जाता है।

रवीन्द्र कालिया

रवीन्द्र कालिया परिवर्तित जीवन मूल्यो और आधुनिक भाव–बोध को अभिव्यक्ति देने वाले कहानीकार है। इनकी कहानियाँ व्यक्ति के अन्तर्मन की आन्तरिक सच्चाइयो को वाह्य स्थितियो से जोडती है। इनमे न कहीं यथार्थवाद का अतिरिक्त आग्रह है, और न ही छोटी घटनाओ को बढा चढाकर आकर्षक अन्त ढूँढने की बाजीगरी है। कुल मिलाकर ये जीवन की विसगतियो और विद्रूपताओ के कहानीकार है।

"नौ साल छोटी पत्नी'[29] एक अनुभूति परक प्रामाणिक कहानी है। तीस वर्षीय 'कुशल की पत्नी तृप्ता उससे नौसाल छोटी है। अपने प्रेमी 'सोम' के प्रेम पत्रो को वह कुशल से छिपाकर पढती है। कुशल सब कुछ जानकर भी अनजान बना रहता है। तृप्ता को जब अपनी गलती का एहसास होता है तो वह 'सोम द्वारा दिये गये सारे प्रेम पत्रो को जला देती है। यह कहानी जहा एक ओर स्त्री–पुरुष के बदलते रिश्तो को अनुभव के धरातल पर दिखाती है, वही दूसरी ओर यहॉ भावुकता से छुटकारा पाने की कोशिश भी दिखाई देती है। इस कहानी से यह आभास मिलता है, कि आधुनिक दृष्टि के कारण स्त्री–पुरुष सम्बन्धो मे अधिक उदारता, परिपक्वता और तटस्थता आई है।

"डरी हुई औरत"[30] पति–पत्नी के बीच 'तीसरे व्यक्ति की उपस्थिति के सहज स्वीकार की कहानी है। 'तुलना का पति 'गौतम' यह जानते हुए भी, कि 'खुशवन्त' तुलना को प्यार करता है, उसे अकेल खुशवत के घर भेज देता है। छुट्टी का दिन होने के बावजूद वह उन दोनो के बीच बाधक नही बनता। 'तुलना' का यह अटपटा लगता है, लेकिन 'गौतम' के लिए इन औपचारिकताओ का कोई महत्त्व नही है। यह कहानी व्यापक मानवीय चेतना और उदारता को अपने आप मे समेटे हुए है। पति–पत्नी के सहज सम्बन्धो मे किसी तीसरे की उपस्थिति दरार नही पैदा करती है।

राजी सेठ

राजी सेठ आधुनिक सवेदना की बारीक बुनावट की कहानीकार है। सीमित रचना ससार होने के बावजूद, उन्होने

मानवीय सम्बन्धो को एक नैतिक एव दार्शनिक आयाम दिया है। राजी सेठ की चर्चा ऐसी कहानीकार के रूप मे होती है जो महिलाओ की अलग सत्ता को अनुचित नहीं मानतीं उनका तर्क है कि— 'स्त्री अपने लेखन मे जिस सत्य को प्रकाशित करती है वह पुरुष के सत्य का पूरक क्यो न माना जाय? 31

'तीसरी हथेली'32 कहानी विवाहित 'पुरुष' और अविवाहित स्त्री' के द्विविधा ग्रस्त मनोभावो एव अन्तर्द्वन्द्वो की कहानी है। कहानी की नायिका 'नन्दी' अपने विवाहित पुरुष मित्र को मिलने का समय देकर भी मिलने नही आती। उसके हृदय मे इस सम्बन्ध की नैतिकता को लेकर काफी सघर्ष चलता है। हर स्त्री का सपना होता है कि उसका अपना घर हो। नन्दी के अन्तर्जगत मे यह प्रश्न बार—बार उठता है, लेकिन सम्बन्ध तोडने की पहल दोनो मे से कोई भी करना नहीं चाहता। मानसिक उहापोह और अनिर्णय के बीच फॅसे दोनो प्रेमियो के तनाव और उलझन को यह कहानी काफी गहराई मे जाकर उद्घाटित करती है।

राजी सेठ की एक अन्य कहानी 'दूसरे देश काल मे' 33 भी इसी भावभूमि पर लिखी गयी है। कहानी की अविवाहित नायिका एक विवाहित पुरुष से दैहिक सम्बन्ध रखती है। इन सम्बन्धो के फलस्वरुप जब वह गर्भवती हो जाती है, तो उसे गर्भपात ही उसके लिए एक मात्र विकल्प बॅचता है। कहानी की वृद्धा विवाह पूर्व बच्चे के जन्म को गलत नहीं मानती परन्तु नायिका दोहरी मानसिकता मे जीती है। एक तरफ वह सामाजिक मान्यताओ और परम्परओ का परित्याग कर विवाह पूर्व पर पुरुष से सम्बन्ध स्थापित करती है,

दूसरी तरफ उसी समाज का हवाला देकर गर्भपात करवाती है। समाज को अपनी सुविधानुसार परिभाषित करने का एक सुन्दर उदाहरण यह कहानी प्रस्तुत करती है।

'अधे मोड से आगे'[34] उथले दाम्पत्य सम्बन्धो और परम्परागत सामाजिक मान्यताओ से विद्रोह करने वाली एक ऐसी पत्नी की कहानी है, जो दो शादियॉ करने के बाद भी, अपने वैवाहिक जीवन से सन्तुष्ट नही है। वह अपने पहले पति सुरजीत का परित्याग करके मिश्रा से शादी करती है लेकिन मिश्रा पत्नी को मात्र भोग और रतिक्रिया का साधन ही समझता है। दो अनुभवो के बाद वह पुरुष समाज और उसकी उपभोक्तावृत्ति को ठुकराकर स्वतत्र जीवन यापन का फैसला करती है। यह कहानी पुरुष की अधिकार भावना और उसकी गुलामी से मुक्ति का घोषणा पत्र है।

मृदुला गर्ग

मृदुला गर्ग की कहानियॉ वर्तमान सामाजिक परिवेश मे व्याप्त विसगतियो, विडम्बनाओ एव स्त्री जीवन की विविध समस्याओ को बिना किसी लाग–लपेट के व्यक्त करती है। एक पत्नी के अन्तर्जगत मे उठने वाले भावो और अन्तर्द्वन्द्वो को उन्होने पूरी ईमानदारी से बयान किया है। 'दुनिया का कायदा कहानी दाम्पत्य सम्बन्धो और भौतिकवादी उच्चाकाक्षाओ के दबाव मे बदलते सामाजिक कायदे कानून को बहुत सूक्ष्मता से अभिव्यक्त करती है। कहानी की नायिका 'रक्षा' एक व्याख्याता है, जिसका पति 'सुनील विजनेस करता है। 'रक्षा' अपने इस जीवन से सतुष्ट है, लेकिन पति की महात्वाकाक्षाओ का कोई अन्त नही है। सुनील' अपनी

पत्नी के सौन्दर्य का उपयोग मिस्टर मेहता नामक एक आदमी को पटाने के लिए करता है। मेहता के साथ नृत्य करते हुए उनकी कामोत्तेजक हरकतो को बर्दाश्त न कर पाने वाली रक्षा नाचना बन्द कर देती है। सुनील उसको समझाते हुए यह स्पष्ट करना चाहता है कि प्रगति के लिए यह आवश्यक है। अपनी भौतिक जरूरतो को पूरा करने के लिए पत्नी का व्यक्ति से वस्तु बनाकर उसकी अस्मिता को दाव पर लगाने वाले धर्मराजो के चरित्र को यह कहानी बखूबी उभारती है।

वर्तमान युग मे प्रत्येक व्यक्ति भौतिक सुख–सुविधाओ से सम्पन्न होने के लिए निरन्तर दौड रहा है। बढती प्रतिस्पर्धा के कारण पति–पत्नी के बीच प्रेम एव सहयोग की भावना व्यावसायिक रूप लेने लगी है। 'मृदुला गर्ग' ने अपनी कहानी तुक'[36] मे विवाह को ऐसी ही स्थिति मे चित्रित किया है, जिससे नारी को स्वच्छन्द जीवन जीने मे सुरक्षा का लाभ मिलता है। कहानी की नायिका के लिए पति एक रक्षा कवच है, जिसकी आड मे अपने जीवन की एकरसता तोडने के लिए पर पुरुषो के साथ हम विस्तर होने मे भी, उसे कोई ग्लानि महसूस नही होती। इस तरह इस कहानी मे विवाह जैसा पवित्र सस्कार एक समझौता मात्र बनकर रह गया है।

'मृदुला गर्ग' की एक अन्य कहानी 'मेरा [37] मे पुरुष आधिपत्य के विरुद्ध नारी स्वतत्रता की उद्घोषणा है। कहानी की नायिका 'मीता' जब गर्भवती होती है, तो उसका पति बच्चे को अपनी भावी उन्नति मे बाधक मानकर उसे गर्भपात कराने की सलाह देता है। अस्पताल पहुँचने पर 'गीता' को पता चलता है, कि यह

पत्नी के सौन्दर्य का उपयोग मिस्टर मेहता नामक एक आदमी को पटाने के लिए करता है। मेहता के साथ नृत्य करते हुए उनकी कामोत्तेजक हरकतो को बर्दाश्त न कर पाने वाली रक्षा नाचना बन्द कर देती है। सुनील उसको समझाते हुए यह स्पष्ट करना चाहता है कि प्रगति के लिए यह आवश्यक है। अपनी भौतिक जरूरतो को पूरा करने के लिए पत्नी का व्यक्ति से वस्तु बनाकर उसकी अस्मिता को दाव पर लगाने वाले धर्मराजो के चरित्र को यह कहानी बखूबी उभारती है।

वर्तमान युग मे प्रत्येक व्यक्ति भौतिक सुख–सुविधाओ से सम्पन्न होने के लिए निरन्तर दौड रहा है। बढती प्रतिस्पर्धा के कारण पति–पत्नी के बीच प्रेम एव सहयोग की भावना व्यावसायिक रूप लेने लगी है। 'मृदुला गर्ग ने अपनी कहानी 'तुक [36] मे विवाह को ऐसी ही स्थिति मे चित्रित किया है, जिससे नारी को स्वच्छन्द जीवन जीने मे सुरक्षा का लाभ मिलता है। कहानी की नायिका के लिए पति एक रक्षा कवच है, जिसकी आड मे अपने जीवन की एकरसता तोडने के लिए पर पुरुषो के साथ हम विस्तर होने मे भी, उसे कोई ग्लानि महसूस नहीं होती। इस तरह इस कहानी मे विवाह जैसा पवित्र सस्कार एक समझौता मात्र बनकर रह गया है।

'मृदुला गर्ग' की एक अन्य कहानी 'मेरा' [37] मे पुरुष आधिपत्य के विरुद्ध नारी स्वतत्रता की उद्घोषणा है। कहानी की नायिका 'मीता' जब गर्भवती होती है, तो उसका पति बच्चे को अपनी भावी उन्नति मे बाधक मानकर उसे गर्भपात कराने की सलाह देता है। अस्पताल पहुँचने पर 'गीता' को पता चलता है, कि यह

उसका नितान्त निजी मामला है। वह अपने मातृत्व का बलिदान करने को तैयार नही होती और वापस लौट आती है। कहानी मे पुरुष मानसिकता से विद्रोह के साथ ही आधुनिक नारियो मे निर्णय लेने की क्षमता का विकास बखूबी दर्शाया गया है।

दीप्ति खडेलवाल

'दीप्ति' खडेलवाल दाम्पत्य सम्बन्धो के खोखलेपन और पति–पत्नी के रिश्तो मे तीसरी उपस्थिति से उत्पन्न होने वाले तनाव और टूटको वाणी देने वाली, इस दौर की सर्वाधिक समर्थ कहानीकार है। आधुनिक सस्कारो मे पली–बढी उनकी कथा नायिकाए उन्मुक्त काम–सम्बन्ध रखने मे विश्वास रखती है।

'सधि–पत्र [38] एक ऐसे विवाहित युग्म की कहानी है जो आपसी सेक्स सम्बन्धो मे आए ठडेपन को, दूर करने के लिए परनारी और 'पर–पुरुष से दैहिक सम्बन्ध स्थापित कर लेते है। यह बात दोनो निसकोच भाव से एक दूसरे से बताते भी है। सामाजिक नैतिकताओ और वर्जनाओ की खुले आम धज्जिया उडाते हुए, सीमा अपने पति से स्पष्ट कर देती है कि तुम मेरे जीवन मे आए एक मात्र पुरुष नही हो। रोहित भी यह स्वीकारता है कि उसके जीवन मे कितनी ही नारियॉ आ चुकी है। 'कहानी के अन्त मे भले ही दोनो पति–पत्नी 'सन्धि पत्र' पर हस्ताक्षर कर देते है, लेकिन इसके बाद भी नये युद्धो की अर्थात् नए सम्बन्धो की सभावनाएँ बनी ही रहती हैं। [39]

'फ्रायडीप' मनोविज्ञान को परिपुष्ट करने वाली इनकी एक

अन्य कहानी 'देह की सीता'[40] है। इस कहानी मे शारीरिक पवित्रता को महत्व देने वाली पारम्परिक अवधारणा का खण्डन किया गया है। तन की भूख को शान्त करने के लिए पर पुरुष से सम्बन्ध स्थापित करने मे डा शालिनी को कोई सकोच नही होता। नारी देह को पूरी तरह भोगने मे ही वह जीवन की सार्थकता मानती है। उसका प्रसिद्ध कथन है —'मै मोमेन्ट्स मे जीती हूँ मेजर। और मोमेन्ट्स की कोई फिलासफी नही होती।[40] यह भावना कहानी के नायक रजीत मे भी है। दोनो ही सेक्स को शरीर की माग मानते है और प्यार का मन की। इस कहानी मे देह की पवित्रता के पुराने मानदडो का निर्मम विध्वस है।

पति–पत्नी के दरकते दाम्पत्य सम्बन्धो मे, आर्थिक असमानता भी एक प्रमुख कारण है। इस स्तर भेद के कारण पारम्परिक विवाह तो प्रभावित हो ही रहे है, प्रेम–विवाह की डोर मे बधे दाम्पत्य सम्बन्धो मे भी गहरी दरार परिलक्षित होती है। "ये भी कोई गीत है"[41] मे डा दीपाली' और 'प्रोफेसर इन्द्रनाथ' प्रेम विवाह करते है। ऊपर से देखने पर उनका जीवन दूसरो के लिए आदर्श है लेकिन अन्दर से दोनो के सम्बन्धो मे कडवाहट है। जहॉ पत्नी डॉक्टर होने के कारण ऊँची कमाई करती है, वहीं पति को बधी बॅधाई 500 रु की पगार ही महीने मे मिलती है। इस आर्थिक स्तर भेद के कारण उनका दाम्पत्य जीवन सहज और सुखी नहीं रह पाता।

कृष्ण बलदेव वैद

कृष्ण बलदेव वैद यौन भावना एव 'फ्री-सेक्स के समर्थक कहानीकार है। इनकी कहानियो की मूल दृष्टि स्त्री-पुरुष की नैतिकतावादी सोच को परे रखकर उन्हे 'स्त्री और पुरुष के स्तर पर चित्रित करने की रही है। यहाँ न कोई 'पति' होता न कोई पत्नी'। इनकी कहानियो के पात्र सेक्स सम्बन्ध स्थापित करने मे न तो कोई सकोच दिखाते है न ही उनके मन मे कोई ग्लानि उत्पन्न होती है।

उनकी कहानी 'त्रिकोण' मे अनैतिक काम-सम्बन्धो तथा यौनाकर्षण का अत्याधुनिक रूप दिखाई पडता है। कहानी की नायिका पति की अनुपस्थिति मे उसके मित्र से यौन सम्बन्ध स्थापित करती है। उसके इस दुस्साहस का कारण न तो शारीरिक अतृप्ति है, न तो पति से कोई मन मुटाव। वह चाहती है कि उसका पति उसके अपने मित्र के साथ आलिगनबद्ध देखे।
"मेरी ऑखे बन्द थीं लेकिन मै एक क्षण के लिए भी नही भूल पायी, कि वह मेरे पति का दोस्त है मै बराबर इस इतजार मे थी, कि ऊपर से मेरा पति आ जाए।"[42] कहानीकार की यह उद्भावना सामान्य पाठक को अस्वाभाविक और पाश्चात्य प्रभावो से आच्छादित लगती है। भारतीय समाज मे अभी इस तरह की मानसिकता का विकास बडे पैमाने पर नहीं हो पाया है।

वैद की एक अन्य कहानी "दूसरे का बिस्तर'[43] मे भी विवाहेतर यौन सम्बन्धो को अत्यत बारीकी से रूपायित किया गया है। कहानी की नायिका 'सिन्थिया' एक बच्ची की मॉ होने के

बावजूद, अपने प्रेमी विनोद' को पति की अनुपस्थिति मे अपने घर आमत्रित करती है। यहॉ समस्या एक दूसरे से सम्बन्ध बनाने मे सकोच या नैतिकता की न होकर दूसरे के विस्तर पर पूर्ण काम सन्तुष्टि न पाने की है। लेकिन आपसी वार्तालाप मे दोनो ही प्रेमी इस बात को प्रकट नही करना चाहते। उनके मन मे इन सम्बन्धो को लेकर जो थोडी बहुत ग्लानि है वह इस डर के कारण कि कही उसका पति समय से पूर्व लौट न आए।

"नीला ॲधेरा [14] अतृप्त कामेच्छाओ को बारीकी से मानव मन की गहराई मे जाकर उद्घाटित करने वाली एक सशक्त कहानी है। कहानी की अधेड उम्र नायिका को उम्र के इस पडाव पर भी यह टीस है, कि उसने अपने यौवन और सुगठित शरीर का पूरा फायदा नही उठाया। उसने पति से परे जाकर भी जिस्मानी भूख मिटायी है, लेकिन आज भी वह अपने आप को अतृप्त महसूस करती है—"मेरा जिस्म अब भी बुरा नहीं है। अब भी अगर मैं किसी के सामने कपडे उतार दूँ तो वह आदमी मेरी बेशर्मी पर हैरान होने के बजाय, मेरे जिस्म की ताजगी और गठन पर ही हैरान होगा। नायिका की अनुपस्थिति को न झेल सकने के कारण उसका पति आत्म हत्या कर लेता है। इस अवसाद को दूर करने के लिए वह शराब और पर–पुरुषो की सगति मे अपने आप को उलझाए रखना चाहती है। यह कहानी जटिल मनोभावो एव अर्न्तद्वन्द्वो के सघन बुनावट की कहानी है।

रमेश बक्षी

रमेश बक्षी की कहानियो निम्न मध्यवर्गीय समाज के छोटे–छोटे सघर्षो और आर्थिक तनावो की ईमानदार अभिव्यक्ति है। पति–पत्नी के अहवादी टकराव के फलस्वरूप टूटते दाम्पत्य सम्बन्धो और उनसे उत्पन्न होने वाले दुष्प्रभावो का उनकी कहानी उत्तर [45] बखूबी उभारती है। कहानी मे पति–पत्नी के बीच चले घमासान वाक्युद्ध का बच्चे के कोमल मन पर गम्भीर प्रभाव पडता है। इसीलिए यहाँ 'तलाक और 'वियुक्त जीवन की बात छोटा बच्चा भी बोलता है। सम्बन्ध–विच्छेद के बाद तीन साल के अवोध बच्चे को कथा–नायक का अपने पास रख लेना–उसके अकेलेपन को बाटने के बजाय उसे बढाता ही है। 'खुदकुशी' और तलाक' जैसे शब्द बच्चे के लिए 'टाफी' और 'बिस्कुट से ज्यादा अहमियत नही रखते। 'आत्म निर्भर' बनाने के प्रयास मे कथा नायक द्वारा बच्चे को शराब पिलाना थोडा असहज और अस्वाभाविक लगता है।

सयुक्त परिवार की जिम्मेदारियो और आफिस की फाइलसो के बोझ तले दबे हुए बाबुओ की पीडा को 'ईमानदार कहानी' [46] मे अत्यत सूक्ष्मता एव बारीकी से उभारा गया है। कथा नायक एक आफिस मे बाबू है जो आफिस की एक सहकर्मी से प्यार करता है। लेकिन पारिवारिक दायित्वो और आफिस की फाइलो मे उलझे रहने के कारण वह न तो अपनी प्रेमिका का समय दे पाता, न ही अपने बच्चो को। प्रेमिका का यह कथन —"सुनो, मै तुम्हारे बिना, जिन्दा नहीं रह पाऊँगी" उसे सन्दर्भहीन लगता है। नि सदेह आर्थिक दबावो एव पारिवारिक दायित्वो के बोझ तले दबे हुए निम्न मध्य

वर्ग की स्थिति को रेखाकित करने वाली यह एक ईमानदार कहानी है।

दिनेश पालीवाल

'दिनेश पालीवाल का रचना ससार मौजूदा सामाजिक आर्थिक विसगतियो एव पारिवारिक रिश्तो के सकट से उत्पन्न कहानियो का ससार है। उनके पात्रो के भीतर क्षोभ और असतोष का ज्वालामुखी दाम्पत्य जीवन मे अव्यवस्था पैदा कर देता है उनकी पुल [47] कहानी सम्बन्धहीनता और उससे उपजे अलगावबोध का एक ऐसा दावानल है, जो एक साथ कई जिन्दगियो को खाक कर देता है। परस्पर विरोधी अभिरुचियो और विचारो का सघर्ष पति–पत्नी को एक दूसरे के प्रति इतना आक्रामक और क्रूर बना देता है कि दोनो को जोडने वाला 'पुल सदा के लिए ध्वस्त हो जाता है। इस विध्वश के परिणामस्वरूप माँ बेटी, बाप–बेटी के सम्बन्धो के बीच झूलती हुई 'कनु' की जिन्दगी भी भयकर यातना दायक हो जाती है। अपने पति द्वारा अनुभा से सम्बन्ध बनाने के समानान्तर कहानी की नायिका 'निर्मला' भी एन सी सी आफिसर से यौन सम्बन्ध स्थापित करके, पुरातन मूल्यो और नैतिक वर्जनाओ को खुली चुनौती देती है।

''कडिया'' [48] सयुक्त परिवार की जिम्मेदारियो और आर्थिक अभावो से जूझते हुए एक ट्यूवेल आपरेटर की कहानी है। एक तरफ जहाँ पर्याप्त अर्थलाभ न कर पाने के कारण पत्नी से तनाव बना रहता है, वहीं दूसरी तरफ इस कहानी मे व्यवस्था की

विसगतियो को भी निर्ममता से उभारा गया है। एक ईमानदार आदमी को बेईमान बनने पर, मजबूर करने वाले प्रजातत्र पर भी यह कहानी करारा व्यग्य है। अपनी आर्थिक तगी की वजह से कथा नायक सतान नहीं चाहता, लेकिन पत्नी इन तर्कों से सतुष्ट कदापि नही होती। कथा नायक की निजी कठिनाइयॉ आज के समस्त निम्न मध्यवर्गीय परिवारो को आत्मसात करती हुई दिखाई देती है।

मणिका मोहिनी

मणिका मोहिनी ने अपनी कहानियो मे, स्त्री–पुरुष सम्बन्धो को एक नए दृष्टिकोण से रेखाकित किया है। अपनी कहानियो मे उन्होने भारतीय परम्परा की सती सावित्री वाले मिथक को तोडा है। उनकी कथा नायिकाए उन्मुक्त यौन सम्बन्ध बनाने मे किसी प्रकार के नैतिक दबाव को स्वीकार नहीं करती। यौन तृप्ति की आकाक्षा पुरुष और स्त्री को आपस मे मिलाने का प्रधान कारण होता है। इनकी कहानी 'तलाश'[49] यौन कुठा से होने वाले दुष्परिणाम को बखूबी उभारती है। तलाश की नायिका 'रितु' का पति से तनाव हो जाता है, जिसके परिणाम स्वरूप दोनो मे सम्भोग नही हो पाता। लेकिन 'रितु' की यौन भावना उसे पति के अलावा किसी तीसरे के साथ सभोग करने के लिए प्रेरित करती है। अपने खालीपन को भरने के लिए वह अनेक पुरुषो के साथ सम्बध स्थापित करना चाहती है ताकि भिन्न–भिन्न प्रकार से किए जाने वाले यौनाचार का सुख प्राप्त कर सके।

मणिका मोहिनी की एक अन्य कहानी 'बोरियत'[50] भी 'पति–पत्नी' के बीच तनाव को स्पष्ट एव खुले ढग से चित्रित

करती है। जो पति शादी के पहले पत्नी को भाति–भाति से रिझाया करता था, वही अब उससे कटा–कटा सा रहता है। इन दोनो के बीच वोरियत का बोध जब गहराने लगता है तो इनके सवादो मे भी सूखापन आ जाता है। पति कहता है–कि प्रेम बकवास होता है तो पत्नी कहती है कि शादी से पहले तुम हर समय क्या बकवास करते थे। कुल मिलाकर कहानी मे दाम्पत्य मे आयी गहरी दरार देखी जा सकती है।

निर्मला अग्रवाल

निर्मला अग्रवाल नारी की दुर्दान्त जिजीविषा एव सकल्प शक्ति की कहानीकार है। उनकी कहानियो मे, गहरी प्रामाणिकता एव यथार्थ का उद्वेलन है। जटिल सवेदना और प्रतीक विधान से रहित होने के बावजूद इनकी कहानियॉ, हृदय के मर्म को छू लेती है। उनकी कहानी "मोड पर"[51] एक विवाहित किन्तु पति द्वारा उपेक्षित नारी की वेदना तथा स्वाभिमान की कहानी है। कहानी का नायक 'आनन्द' अपनी पत्नी 'सुनन्दा' से बात–बात मे लड पडता है। 'सुनन्दा' उसकी बात खामोशी से सुनती रहती है, लेकिन उसके मन मे आनन्द के प्रति धीरे–धीरे उपेक्षा का भाव जागृत होने लगता है। एक दिन आनन्द को पता चलता है–कि पडोस मे रहने वाले 'राजेश्वर' की पत्नी दूसरे के साथ भाग गयी। दूसरे के जीवन मे घटी इस छोटी सी घटना से नायक का हृदय परिवर्तन हो जाता है। उसे आभास होता है कि "शरीर का सौन्दर्य केवल तृप्ति और सुख ही नहीं देता, बल्कि अपने साथ और भी बहुत कुछ ले आता है, जो बहुत कड़वा होता है' उसको अपनी निष्ठावान पत्नी के

प्रति किये गये अपने ज्यादती का अहसास होता है।

अग्रवाल की एक दूसरी कहानी सिमटती जिन्दगी[52] परम्परा और मर्यादा की बेडियो मे जकडी हुई एक ऐसी नारी की कहानी है जिसका पति उसे कम शिक्षित होने के कारण जाहिल और गॅवार समझ कर उसका परित्याग कर देता है। एक दुर्घटना मे घायल होने के बाद कहानी की नायिका अपने माता–पिता के आग्रह पर पति को देखने ससुराल जाती है। सास ससुर की बेबसी और मूक व्यथा का प्रतिरोध न कर पाने के कारण उसे हॉस्पिटल मे ही रुक जाना पडता है। इसी बीच घर लौटने पर विकलाग पति से एक बच्ची का जन्म भी हो जाता है, किन्तु अन्त तक मन्नो उस स्थिति से समझौता नही कर पाती। तन और मन की धुरी अलग–अलग दिखायी देती है।

इन कहानियो और कहानीकारो के अतिरिक्त भी ऐसे अनेक कथाकार है जिन्होने अपनी कहानियो के माध्यम से स्त्री–पुरुष सम्बन्धो और दाम्पत्य जीवन को एक नया आयाम दिया है। इनमे रामदरश मिश्र (चिट्ठियो के बीच), महेन्द्र भल्ला (एक पति के नोट्स), प्रभुनाथ सिह आजमी (सलाखो के आर–पार) ओम प्रकाश निर्मल (बेत के निशान) राजकमल चौधरी (दामपत्य) मिथिलेश्वर (पहली टकी), महीप सिह (उलझन) शैलेश मटियानी (दो दुखो का एक सुख) राजकुमार भ्रमर (बैशाखी) आदि प्रमुख है।

पाद-टिप्पणी

1 मधुरेश — हिन्दी कहानी का विकास पृष्ठ 61

2 कहानी नयी कहानी — पहला सस्करण 1966 पृष्ठ 53

3 मधुरेश — हिन्दी कहानी का विकास, पृष्ठ 135

4 राजेन्द्र यादव — मेरी प्रिय कहानिया — पृष्ठ 48

5 राजेन्द्र यादव — मेरी प्रिय कहानिया — पृष्ठ 61

6 वही — पृष्ठ 61

7 राजेन्द्र यादव — मेरी प्रिय कहानिया

8 मोहन राकेश — बकलमखुद — पृष्ठ 118

9 मोहन राकेश — एक और जिन्दगी

10 डॉ बच्चन सिह — परम्परा का नया मोड रोमाटिक यथार्थ (लेख) आलोचना 1965

11 मधुरेश — हिन्दी कहानी का विकास — पृष्ठ 105

12 ऊषा प्रियबदा — मेरी प्रिय कहानिया

13 ऊषा प्रियबदा — मेरी प्रिय कहानिया

14 ऊषा प्रियबदा — जिन्दगी और गुलाब के फूल

15 मधुरेश — हिन्दी कहानी का विकास पृष्ठ 102

16 डॉ रमेश चन्द्र लावनिया — हिन्दी कहानी मे जीवन मूल्य, पृष्ठ 244

17 मधुरेश — नयी कहानी पुनर्विचार — पृष्ठ 238

18 मधुरेश — हिन्दी कहानी का विकास — पृष्ठ 109

19 मन्नू भण्डारी — ऊँचाई (एक प्लेट सैलाब) पृष्ठ 147

20 मन्नू भण्डारी — बद दराजो का साथ (एक प्लेट सैलाब)

21 मन्नू भण्डारी – कील और कसक (मै हार गयी)

22 मन्नू भण्डारी – एरवाने आकाश नाई (त्रिशकु)

23 दूधनाथ सिह – रीक्ष (सपाट चेहरे वाला आदमी)

24 दूधनाथ सिह – दिनचर्या (सारिका फरवरी, 1972)

25 मेहरून्निसा परवेज – सोने का बेसर – मेरी बात पृष्ठ 20

26 मेहरून्निसा परवेज – अयोध्या से वापसी (अन्तिम चढाई)

27 मेहरून्निसा परवेज – एक और सैलाब (आदम और हव्वा)

28 गिरिराज किशोर – फ्राकवाला घोडा निकर वाला साईल (पेपरवेट)

29 रवीन्द्र कालिया – नौ साल छोटी पत्नी

30 रवीन्द्र कालिया – डरी हुयी मौत (नौ साल छोटी पत्नी)

31 वेद प्रकाश अमिताभ – हिन्दी कहानी के सौ वर्ष पृष्ठ 92

32 राजी सेठ – तीसरी हथेली (तीसरी हथेली)

33 राजी सेठ – दूसरे देश काल मे (दूसरे देश काल मे)

34 राजी सेठ – अधे मोड से आगे (अधे मोड से आगे)

35 मृदुला गर्ग – दुनिया का कायदा

36 मृदुला गर्ग – तुक (मनोरमा, महिला कथाकार विशेषाक, अक्टूबर, 1977)

37 मृदुला गर्ग मेरा (डेफोडित्व जल रहे है।)

38 दीप्ति खडेलवाल – सधि पत्र (वह तीसरा)

39 वही।

40 दीप्ति खडेलवाल – देह की सीता (कडवे सच)

41 दीप्ति खडेलवाल – ये भी कोई गीत है (कडवे सच)

42 कृष्ण बलदेव वैद – त्रिकोण

43 कृष्ण वलदेव वैद – दूसरे का बिस्तर (कल्पना अक्टॅबर 1964)

44 कृष्ण बलदेव वैद – नीला अँधेरा (दूसरे किनारे से)

45 रमेश वक्षी – उत्तर (मेरी प्रिय कहानियाँ)

46 रमेश वक्षी – ईमानदार कहानी (एक अमूर्त तकलीफ)

47 दिनेश पालीवाल – पुल – (दुश्मन)

48 मणिका मोहिनी – तलाश

49 मणिका मोहिनी – बोरियत

50 मणिक मोहिनी – बोरियत

51 निर्मला अग्रवाल – मोड पर (साप्ताहिक हिन्दुस्तान) मई – 1970

52 निर्मला अग्रवाल – सिमटती जिन्दगी (अस्तित्व की तलाश)

पंचम अध्याय

सन्दर्भित कहानियों में दाम्पत्य सबंधों की जटिलताओं के विभिन्न आयाम

(क) सामाजिक कारण

- (i) सदेह एव अविश्वास
- (ii) पति–पत्नी के बीच तीसरे की उपस्थिति
- (iii) सामाजिक मर्यादा एव परम्परा का दबाव
- (iv) विघटित दाम्पत्य और उसका परिणाम

(ख) मनावैज्ञानिक कारण

- (i) पति–पत्नी के बीच उभरता अह भाव
- (ii) स्त्री–पुरूष के सेक्स सम्बन्धी दृष्टिकोण

(ग) आर्थिक कारण

- (i) संयुक्त परिवार का दबाव तथा व्यक्ति स्वातत्र्य की छटपटाहट
- (ii) पति की महत्वाकांक्षाओं के दांव पर पत्नी की अस्मिता
- (iii) आर्थिक संकट और पत्नी की मजबूरी

पंचम अध्याय

संदर्भित कहानियों में दाम्पत्य सबंधों की जटिलताओं के विभिन्न आयाम

स्वातत्रयोत्तर कहानी मे 'दाम्पत्य सबधो' के विविध स्तरो को अत्यत सूक्ष्म और प्रामाणिक दृष्टि से अभिव्यक्त किया गया है। केवल मात्रा की दृष्टि से ही नहीं, अपितु गुणात्मकता की दृष्टि से भी आज कहानी का यह, सर्वाधिक नहीं तो, अत्यत समृद्ध पक्ष अवश्य ही है। दाम्पत्य सबधो पर नयी कहानी के समय से ही बहुत अच्छी कहानियो की रचना होने लगी थी, किन्तु उन कहानियो मे नैतिकता का एक झीना सा आवरण होता था। समकालीन हिन्दी कहानी ने इस निर्मोक को उतार फेका। जो है, जैसा है, की तर्ज पर आधुनिक कहानिकारो ने अपने भोगे हुए यथार्थ को पूरे ईमानदारी और सच्चाई से उद्घाटित किया है। स्त्री–पुरुष सबधो के सूक्ष्म से सूक्ष्म स्तरो एव अनछुए प्रसगो को जिस रूप मे यहॉ वाणी मिली है, वह हिन्दी कहानी की बहुत बडी उपलब्धि है।

'स्त्री–पुरुष' संबंधों के विविध स्तरो को उद्घाटित करने मे

आज कथाकार जिस रूप मे प्रवृत्त हो सकता है, उसका कारण हमारा परिवर्तित सामाजिक परिवेश है। स्त्री शिक्षा ने भी सामाजिक परिदृश्य को बहुत द्रुत गति से बदला है। घर—परिवार की लक्ष्मण रेखा को पार कर, चौके—चूल्हे की घुटन को छोडकर, स्त्री—पुरूष के साथ कधे से कधा मिलाकर चल रही है। इससे उसका युग—युग से अभिवदित अबला रूप, जो पुरूष ने अपनी सुविधा के लिए बना लिए था, समाप्तप्राय हो गया। आधुनिक कहानियो मे पत्नी बेचारी' नही रह गयी है, वह किसी भी प्रकार की सघर्षशील स्थिति का सामना करने के लिए तत्पर है। नौकरी पेशा होने से उसे आर्थिक सुरक्षा और स्वालबन प्राप्त हुआ। इस स्थिति ने जहा उसे एक ओर अपने अधिकारो के प्रति जागरूक बनाया, वहीं दूसरी ओर वह अपनी दयनीय स्थिति को भाग्य का विधान अथवा समाज की देन या, पति परमेश्वर का वरदान स्वीकार करने को तैयार नही। पुरूष नियत्रित समाज और व्यवस्था ने स्त्री और पुरूष के लिए अलग—अलग पैमाने बनाये है, वहॉ वह पुरूष को खुली चुनौती देकर उन दुहरे मानो पर प्रहार करती है।

इस परिवर्तित सामाजिक परिवेश का परिणाम यह हुआ है कि, पति—पत्नी सबधो के सूक्ष्म से सूक्ष्म स्तर, अनछुयी अनुभूतिया और मानव—मन की पर्तो की गहराई बडी बेबाकी के साथ कहानी मे अभिव्यक्त हुयी है। नयी कहानी के दौर की कृष्णा सोबती ऊषा प्रियबदा, मन्नू भडारी आदि की कहानियो मे इस ओर पहल की थी,

परतु दाम्पत्य और प्रेम की बारीकियो को सूक्ष्मता से अभिव्यजित करने का श्रेय समकालीन कहानीकारो को ही प्राप्त है। विभिन्न सामाजिक दबावो से जीवन मे भी स्त्री जिन अनुभूतिये को अभिव्यक्त नहीं कर पायी है, उन्हे कहानी मे अभिव्यक्ति मिली है। पति–पत्नी के सबधो के इस बहुआयामी ससार की कहानियो का विश्लेषण निम्नाकित शीषर्को मे किया जा सकता है।

सामाजिक कारण

किसी भी देश या जाति के उन्नयन मे समाज की भूमिका काफी महत्वपूर्ण होती है। लोगो के रहन–सहन, रीति–रिवाज एव परम्पराओ का एक हद तक समाज नियता होता है। बदलते जीवन मूल्यो एव अभिरूचियो के साथ तादात्म्य स्थापित न कर पान वाला समाज प्रतिगामी होता है। भारतीय परिप्रेक्ष्य मे सामाजिक मान्यताओ एव रूढियो का दबाव स्त्री–पुरूष सम्बन्धो को काफी जटिल बना देता है। समाज के पितृसत्तात्मक ढॉचागत विसगतियो की मार नारी को ज्यादा झेलनी पडती है। भारतीय सामाजिक सरचना मे पत्नी को समानता का अधिकार नहीं दिया गया। कार्लमार्क्स के सहयोगी रचनाकार एगेल्स ने ठीक ही लिखा है– "मातृसत्ता से पितृ सत्तात्मक समाज का अवतरण वास्तव मे औरत जाति की बडी ऐतिहासिक हार थी।[1]

सामाजिक परम्पराओ एव मूल्यो के निर्माण मे सदियॉ लग

जाती है, इस लिए जब परिवार मे टूट एव तनाव उत्पन्न होता है, तो समाज व परिवार उससे प्रभावित हुए बिना नही रहता। स्त्री–पुरूष या पति–पत्नी के बीच बढती दूरियो के उत्तरदायी सामाजिक कारणो एव उनसे प्रभावित कहानियो को निम्न बिन्दुओ के अन्तर्गत रेखाकित किया जा सकता है–

(I) सन्देह एव अविश्वास

पति–पत्नी का एक दूसरे पर सन्देह एव अविश्वास दाम्पत्य जीवन मे जहर घोल देता है। आज हम कितने ही आधुनिक एव प्रगतिशील क्यो न हो "रूढिवादी परिवार और समाज स्त्री–पुरूष की कल्पना यौन गन्ध रहित नही कर पाता। रूढिवादी परिवार और समाज ही नहीं, बल्कि पुरूष और स्त्री भी अपने सन्दर्भ मे यह बात स्वीकार नहीं कर पाते"[2] राजेन्द्र यादव की कहानी पुराने नाले पर नया फ्लैट'[3] मे सन्देह के बादल काफी घने हैं। पत्नी पुरातन सस्कारो से मुक्त नहीं हो पाती, पति अपेक्षाकृत आधुनिक है। पति के लिए किसी अन्य नारी का दोस्त होना, कोई अनुचित बात नहीं है। लेकिन पत्नी 'वीरू' के लिए यह अकल्पनीय है। वह किसी पुरूष और स्त्री के मध्य काम सम्बन्धो के अलावा अन्य रिश्ते की कल्पना भी नहीं कर पाती। 'दीप्ति' और अपने 'पति' के बीच सम्बन्धो को लेकर उसके मन मे हमेशा तनाव बना रहता है, इसी तरह मेहरून्निसा परवेज की कहानी 'अयोध्या से वापसी' मे

कथानायक राजेन्द्र' अपनी 'पत्नी' पर शक करता है– 'राजेन्द्र के दिमाग मे यह शक किसी ने बैठा दिया था कि जो वह मायके चली गयी थी उसके पीछे कोई था जिससे वह बाद मे शादी करती। इसी शक से भरकर उसकी सब गतिविधियो पर नजर रखी जा रही थी'[4] पति के इस मानसिकता और सदेह वादी सोच से पत्नी इतनी आहत होती है, कि वह सदा के लिए पति का घर त्याग देती है।

(II) पति-पत्नी के बीच तीसरे की उपस्थिति

दाम्पत्य सम्बन्धो मे तनाव एव टकराव का सबसे प्रमुख कारण पति–पत्नी के बीच किसी तीसरे व्यक्ति की उपस्थिति है। वह 'तीसरा' पूर्व प्रेमी या प्रेमिका भी हो सकता है या, वर्तमान यौन सम्बन्धो के अतृप्ति के परिणाम स्वरूप खोजा गया कोई नया साथी। "वस्तुत कोई तीसरी उपस्थिति दाम्पत्य को इस लिए कडवाहट दे देती है कि पति और विशेषत पत्नी एक दूसरे को उसकी सम्पूर्णता में पाना चाहते है।"[5] 'मन्नू भण्डारी' की कहानी 'उॅचाई की नायिका 'शिवानी' अपने पूर्व प्रेमी 'अतुल से शारीरिक सम्बन्ध स्थापित कर लेती है। लेकिन अपने इस कृत्य पर उसे पश्चाताप नहीं है। पति को जब इस सम्बन्ध की जानकारी होती है, तो दोनो के वैवाहिक जीवन मे भूचाल आ जाता है। पति आसानी से इस 'देहदान' को स्वीकार नहीं कर पाता और दोनो के सम्बन्ध टूटने के

कगार पर पहुँच जाते है। 'दोनो मे से शायद कोई भी नही सोया था, हॉ उनके बीच का प्यार और अपनत्व सो गया था सो ही नहीं गया था शायद मर गया था। एक ही पलग पर दोनो लेटे थे, पर मन के बीच एक अनन्त दूरी आ गयी थी।[6] कथा नायिका अपने तर्कों के माध्यम से बडी मुश्किल से अपने पारिवारिक घरौदे को नष्ट होने से बचा पाती है।

इसी का दूसरा पहलू उभरा है—'दूधनाथ सिह' की कहानी 'रीछ' मे, जहॉ कथा नायक अपने विवाहेतर प्रेम सम्बन्ध को लेकर हमेशा आशकित रहता है। कहानी का 'रीछ' इसके इस डर का प्रतीक है। पत्नी—पति से एक निष्ठा चाहती है। इसके भग होने की प्रतिक्रिया मे वह अपने सतीत्व को भी दॉव पर लगाने के लिए तैयार है— 'अगर मैने जान लिया कि ऐसा कुछ भी तुमने किया था तो मैं तुम्हे दिखा दूँगी। तुम कल्पना भी नहीं कर सकते

हॉ कि मै क्या कर सकती हूँ। मै किसी

बहुत फूहड नकारा आदमी के साथ ।"[7] कहानी मे तीसरे के उपस्थिति का एहसास मात्र पति—पत्नी के शारीरिक सम्बन्धो मे भयानक उदासी और ऊब पैदा कर देता है। पति—पत्नी के सम्बन्धो की सहज स्थिति को रवीन्द्र कालिया की 'नौ साल छोटी पत्नी' तथा 'एक डरी हुई औरत' मे देखा जा सकता है। नौ साल छोटी पत्नी मे कथा नायक जहाँ अपनी पत्नी को उसके प्रेमी द्वारा लिखे गये प्रेम पत्र पढ़ते देखकर भी उसके किशोर 'तर्कों' को हॅस कर

स्वीकार कर लेता है वही 'डरी हुई औरत' का नायक 'गौतम' अपनी पत्नी तुलना' को उसके प्रेमी के साथ एकान्त देने के लिए जानबूझ कर उसके साथ नहीं जाता। इन कहानियो मे विवाहेतर सम्बन्ध दाम्पत्य जीवन मे खरोच तो पैदा करते हैं, लेकिन चेहरे पर उसका कोई निशान नहीं छोडते। विवाहेत्तर सम्बन्धो की इकहरी परिणति—'मन्नू भण्डारी' की ''कील और कसक' तथा 'राजी सेठ की कहानी ''दूसरे देश काल'' मे देखी जा सकती है। कील और कसक की नायिका पति से सतुष्ट न होने के कारण उसके एक निकट रिश्तेदार से सम्बन्ध बनाती है। उससे जुदा होते समय उसे अपार कष्ट होता है, जब कि उसका प्रेमी अपनी नवविवाहिता पत्नी के साथ सानन्द है। इसी तरह राजी सेठ की कहानी 'दूसरे देश काल मे' की अविवाहित नायिका के सेक्स सम्बधो की परिणति उसके गर्भवती होने मे होती है। अविवाहित मातृत्व का दश उसे अकेले ही भोगना पड़ता है और वह गर्भपात कराने के लिए मजबूर हो जाती है। निर्मला अग्रवाल की 'बीच की कडी की– 'वचिता राजरानी उस समस्त नारी जाति की पीडा की प्रतीक बन जाती है, जो पूरी निष्ठा से अपने पति पर भक्ति रखती है उस पर अटूट विश्वास रखती है, पर अचानक एक दिन उसे पता चलता है, कि एक तीसरी नारी पूरी वेगवत्ता से आकर उसके और उसके पति के बीच बैठ गयी है। पतियो की ऐसी जमात को न तो पत्नी की निष्ठा, न बच्चो की आक्रोश भरी कातर दृष्टि ही कर्तव्यपथ का बोध

कराती है। अपनी सम्पूर्ण ढिठाई के साथ यह पति वर्ग जीता रहता है यही विडम्बना है।" [8]

(III) सामाजिक मर्यादा एव परम्परा की अवहेलना

सामाजिक मर्यादा और परम्परा की दुहाई पुरूषो के अपेक्षा स्त्रियो को चुप कराने के लिए अक्सर दी जाती है। आधुनिक कहानी मे परम्परा और मर्यादा का उल्लघन करके अपने स्वतत्र व्यक्तित्व का निर्माण करने वाले अनेको चरित्र उपस्थित है। कृष्णा सोबती की कहानी "मित्रो मरजानी' की मित्रो एक ऐसी नारी है जो सारे परम्परागत निषेधो और प्रतिबन्धो का धता बताते हुए अपने होने की खुले आम घोषणा करती है। सदा सच बोलने वाली मित्रो किसी से भी डरती नहीं है और अपने अनैतिक सम्बन्धो की भी पोल खोल देती है। उसके शरीर मे इतनी भूख है कि वह पर पुरूष से भी शारीरिक सम्बन्ध स्थापित कर लेती है। मित्रो जीवन की सार्थकता अपनी देह की काम तृप्ति कर लेने मे ही समझती है। यह कहानी मित्रो के माध्यम से "निषेध और नकार की दृष्टि को खारिज करते हुए स्त्री की यातना और पीडा को उसके सामाजिक सन्दर्भो मे ढूढने का प्रयास करती है।" [9]

निर्मला अग्रवाल की कहानी "मोड पर" की नायिका पति की उपेक्षा और तिरस्कार के प्रति एक नकारात्मक दृष्टि रखती है। यहॉ विद्रोह का स्वर अन्तर्मुखी है। दंभी पुरुष बनाम पति को उसकी

गलती का एहसास वह अपने मौन एव नायक के प्रति अवज्ञा भाव रखकर उसे कराती है।

परम्परा और पारिवारिक मर्यादा के नाम पर पति की ज्यादतियो को उसके लौटने की प्रत्याशा मे चुपचाप सहते रहने का भाव कृष्णा सोबती की 'एक दिन' तथा डा॰ निर्मला अग्रवाल की 'सिमटती जिन्दगी' कहानी मे परिलक्षित होता है। जहॉ एक दिन मे कथा नायिका शीला अपने पति द्वारा उपेक्षिता और परित्यक्ता होकर भी सपत्नी की अनुपस्थिति मे अपने पति और प्यार को एक दिन के लिए सही – वापस पा लेती है वही सिमटती जिन्दगी की कथा नायिका मन्नो अपनी स्थितियो से समझौता नहीं कर पाती यह सोचकर कि यदि परिस्थितियो ने उसके पति को विकलागता के बिन्दू पर न ला खडा किया होता–' तो क्या फिर भी कभी इनके मन मे मेरे लिए यह ख्याल आता ? क्या वह मुझसे कभी सम्बन्ध जोडते ?"[10] ये दोनो ही कहानियॉ 'पति परमेश्वर के नैतिक मानदडो का अतिक्रमण नहीं कर पाती।

पारिवारिक जिम्मेदारियो और लम्बे समय तक घर से अनुपस्थित रहने वाले पति के प्रति पत्नी के दृष्टिकोण मे आए परिवर्तन को 'उषा प्रियम्बदा' की कहानी 'वापसी' मे देखा जा सकता है। जहाँ कथा नायक 'गजाधर बाबू' की लम्बी अनुपस्थिति उन्हे पारिवारिक ढॉचे से बाहर कर देती है। प्रति के पति पत्नी की उपेक्षा और असहिष्णुता का बोध इतना गहरा है, कि पाठक के मन

मे कथा नायिका के प्रति गहरी वितृष्णा उत्पन्न हो जाती है।

(IV) विघटित दाम्पत्य और उसका परिणाम

व्यापक सामाजिक विघटन के इस सक्रमण कालीन दौर मे भारतीय समाज की सबसे बडी त्रासदी पुराने मूल्यो एव आदर्शों का टूटना तथा उनकी जगह पर नवीन मूल्यो का पूरी तरह प्रतिस्थापित न हो पाना है। पुरातन और नवीन की यह तनातनी मूल्यहीनता की स्थिति पैदा कर देती है, जिसके फलस्वरूप व्यक्तित्वो मे टकराव होता है। इस टकराव के परिणाम स्वरूप अब एकाकी परिवार भी बिखरने लगे है। पारिवारिक विघटन का सबसे त्रासद तथा यातनादायक प्रभाव बच्चो पर पडता है तथा माता–पिता द्वारा उठाये गये कदम से बच्चे ही सबसे ज्यादा आहत होते है–"कितना त्रासद हो जाता है वह 'दाम्पत्य' जिसका एक अग पेण्डुलम की मानिन्द गतिशील हो उठता है और दूसरा अग पत्थर की तरह जड हो जाता है। उसके साथ ही जड हो जाते है मानवीय सम्बन्ध और रिश्ते खत्म होने से पहले अधूरी रह जाती है, कोई कहानी और किसी को ढोनी पडती है उस अधूरी कहानी की पाडुलिपि" 11 "दाम्पत्य के विघटन की कडवाहट बडी जहरीली होती है। बच्चे के दिल–दिमाग को विभ्रम कर देने वाली। असहज बना देने वाली। उसके कोमल मन मे एक खौफ का जन्म होता है, कभी न खत्म होने वाली खौफ का, जो कुण्ठाओ के सिवा कोई

दूसरी विरासत नही सौप सकती।[12]

पति–पत्नी के एक दूसरे से अलग होने, तथा बच्चे पर पडने वाले दुष्प्रभाव को दिनेश पालीवाल की कहानी पुल' निहायत बारीकी से उभारती है। परस्पर विरोधी अभिरूचियो एव विचारो का सघर्ष 'पति–पत्नी' को एक दूसरे के प्रति इतना आक्रामक और क्रूर बना देता है, कि दोनो को जोडने वाला पुल' सदा के लिए ध्वस्त हो जाता है। बेटी 'कनु' दोनो के बीच पेडुलम की भॉति झूलते हुए निर्णय नही कर पाती कि दोनो मे से कौन गलत था– "नही, वे आएगी नही। जाना व्यर्थ होगा। उन्होने जीवन भर कुछ नहीं समझा न समझने की कोशिश ही की। निहायत गुस्सैल औरत है। कहते–कहते पापा चुप हो गये। उनके चेहरे पर पीडा की छाया रेगने लगी थी।" "पापा ने तो हमेशा मुझे ही गलत समझा। मुझे ही दबाने की कोशिश की। कम–से–कम तुम तो मुझे सही समझो।"[13] इस आरोप–प्रत्यारोप के बीच कनु की मानसिक पीडा और प्रताडना को समझने का प्रयास माता–पिता मे से किनी ने नहीं किया। 'पति–पत्नी' का अलगाव अबोध बच्चे से उसका बचपन कैसे असमय छीन लेता है, इसका बहुत ही विध्वशक उदाहरण प्रस्तुत करती है रमेश वक्षी की कहानी 'उत्तर। सम्बन्धो की कड़वाहट एव तिक्तता 'पति–पत्नी' के दैनिक वार्तालाप मे इतनी ज्यादा घुल चुकी है कि चार साल का अबोध बच्चा भी वही भाषा बोलने लगता है। खुदकुशी उसके लिए 'कुल्फी' तथा तलाक

'लालीपाप हो गयी है।[14] समय से पूर्व आत्म निर्भर बनाने की प्रक्रिया मे कथानायक बच्चे को शराब का सेवन कराने से भी नहीं हिचकिचाता। बच्चे के अन्तर्मन पर छाये अकेलेपन और उदासी के गहरे होते भाव का उत्तर न तो कथानायक के पास होता है न ही पाठक के।

तलाक लेकर पुनर्विवाह कर लेने से भी समस्या का हल नही हो पाता। 'राजी सेठ' की कहानी 'अन्धे मोड से आगे तलाक तथा पुनर्विवाह को कथ्य बनाकर लिखी गयी है। कथा नायिका पति 'सुरजीत' से तलाक लेकर 'मिश्रा से दूसरा विवाह कर लेती है लेकिन वहाँ भी अपने आप को सुखी अनुभव नही करती। कथा नायिका की इच्छाओ आकॉक्षाओ की चिन्ता न तो उसके पहले पति को थी न ही मिश्रा को है।

(ख) मनोवैज्ञानिक कारण

अस्तित्व वादी विचारधारा के फलस्वरूप हिन्दी कहानी मे परम्परागत मूल्यो के प्रति अविश्वास एव अनास्था की जो धारणा उत्पन्न हुई, उसे पाश्चात्य विचारक सिग्मण्ड फ्रायड' के काम सम्बन्धी मनोवैज्ञानिक चितन ने और परिपुष्ट कर दिया। "फ्रायडीप विचारधारा से प्रभावित हिन्दी कहानीकारो ने आपसी सम्बन्धो मे यौन–प्रवृत्ति को प्रमुखता दी।"[15] फ्रायड ने प्रेम और यौन तृप्ति को व्यक्ति की सहज इच्छा के रूप मे स्वीकार किया, जिसकी पूर्ति

करना मानव का अधिकार है। मानव के अतकरण की तीन प्रवृत्तियो—'अह भय और सेक्स को फ्रायड ने जीवन की प्रेरक शक्ति मानते हुए उसके दमन को अनुचित एव अनिष्टकर ठहराया है। "गॉधीवाद सयम और आत्मशुद्धि जैसे जिन परम्परागत नैतिक आदर्शो की सराहना करता है, उन्हे निषेधात्मक मान फ्रायडवाद ने उन्मुक्त भोग और आचरण स्वातत्र्य को सर्वथा नैतिक माना है।[16]

भारतीय सस्कृति मे शारीरिक यौन तृप्ति के लिए यौन—व्यापार सामाजिक दृष्टि से घृणित तथा वर्जनीय है, इसलिए विवाह मे सामाजिक पक्ष प्रबल रहा, जिसमे विवाह का ध्येय धर्म प्रजनन तथा रति माना गया, परन्तु मनोविश्लेषण के प्रभाव के कारण स्त्री—पुरूष के आकर्षण को स्वाभाविक माना जाने लगा है। नारी भी अपनी काम—भावनाओ से प्रेरित होकर अपनी तृप्ति का उपाय पुरूषो की भॉति ही करने लगी है। दाम्पत्य सम्बन्धो को प्रभावित करने वाले मनोवैज्ञानिक कारको को अलग रेखकित किया जा सकता है।

(I) पति-पत्नी के बीच उभरता अहं भाव

स्त्री शिक्षा के प्रति आयी जागरूकता ने सामाजिक समीकरणो को काफी हद तक बदल दिया है। जहॉ भारतीय सामाजिक सरचना मे 'पुरूष' बनाम 'पति' की सोच प्रारम्भ से ही अहवादी रही है, वहीं स्त्री भी अपने आप को दोयम दर्जे की नागरिक मानने को तैयार नहीं है। व्यक्तित्वों के अह की यह टकराहट आज के

कहानीकार की मुख्य त्रिता रही है। 'राजेन्द्र यादव' की कहानी—'टूटना' मे 'लीना' और किशोर' के बीच विचारो एव सस्कारो की भिन्नता के कारण दरार पैदा हो जाती है। कहानी मे कथा नायक और नायिका के बीच जो 'टूटना सम्भव हुआ है, वह 'लीना' के "अभिजात्य आग्रहो के कारण इतना नहीं है जितना कि उसके पिता की आतकित कर देने वाली छाया के कारण। 17 मध्य वर्गीय विवाहित जिन्दगी मे पत्नी के अभिजात्य एव तथाकथित कुलीनना के दभ से असतुष्ट 'किशोर' को दुहरी लडाई लडनी पडती है। इस लडाई से तग आकर दोनो एक दूसरे से अलग होना चाहते हैं लेकिन दोनो इतना टूट चुके हैं कि अलग होना भी सभव नहीं हो पाता – "ऐसे ढीले तन और मन से अब जिन्दगी का ढर्रा बदलना नये सिरे से नयी जिम्मेदारियो को ओढना और फिर आखिर उसे अब जरूरत भी क्या है? वह अब रह ही कहाँ गया, जो " 18 किशोर के इस कथन मे जीवन के प्रति उदासी और थकान का भाव काफी गहरा है। इस कहानी मे यदि दाम्पत्य सम्बन्ध पूरी तरह नही टूटता तो वह इसलिए नहीं कि कहानी मे टूटने की निर्णायक स्थिति नहीं बन पायी है, बल्कि इसलिए कि कहानीकार की वैवाहिक सस्कार के प्रति गहरी आस्था है।

'मोहन राकेश' की बहुचर्चित कहानी "एक और जिन्दगी" मे भी तनाव और टूट का प्रमुख कारण विपरीत रूचियो एव अह की

लडाई है। ''बीना और 'प्रकाश' के सम्बन्ध–विच्छेद के बीच कोई बडा और बुनियादी कारण मौजूद नहीं है।'[19] कथा नायिका बीना आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी भी है, और दर्पशील भी फलस्वरूप वह झुक नहीं पाती। दोनो के बीच पति–पत्नी का स्नेह और प्यार विकसित नही हो सका– ''विवाह के कुछ महीने बाद से ही 'पति–पत्नी' अलग–अलग रहने लगे थे। विवाह के साथ जो सूत्र जुडना चाहिए था, जुड नही सका था। दोनो अलग–अलग जगह काम करते थे और अपना स्वतत्र ताना–बाना बुन कर जी रहे थे।''[20] प्रकाश के बहुत चाहने पर भी बीना अपने स्वतत्र व्यक्तित्व से समझौता नहीं कर पाती। पति–पत्नी का एक दूसरे का साथ न निभा पाने की पीडा 'राजेन्द्र यादव' की छोटे–छोटे ताजमहल' मे भी परिलक्षित होती है। 'देव' और 'राका' वर्षो तक एक दूसरे के सुख–दु ख का साथी रहने के पश्चात ताजमहल की छाया मे अलग हो जाते है, जहॉ कभी 'देव' की पत्नी 'राका' ने हनीमून मनाने की कल्पना की थी। यहॉं अलग होने की प्रक्रिया तनावपूर्ण न होकर सुखद एव सौहार्द्र पूर्ण वातावरण मे सम्पन्न होती है।

(II) स्त्री-पुरूष के सेक्स सम्बन्धी दृष्टिकोण

बदलते नैतिक मूल्यो और भौतिकवादी प्रवृत्ति के कारण 'सेक्स' के प्रति एक नया दृष्टिकोण विकसित हुआ है। पुरूष और स्त्री दोनो अपने यौन भावना की तृप्ति के लिए नि सकोच किसी

अन्य से शरीरिक सम्बन्ध स्थापित कर लेते है। विवाहित जीवन मे सेक्स की सकल्पना मे भी यह परिवर्तन हुआ है कि उसे केवल सन्तानोत्पत्ति का साधन समझने के बजाय सम्पूर्ण एन्द्रीय सुख माना जाने लगा है।' [21] स्त्री–पुरूष दोनो के लिए सेक्स एक निजी मामला बन गया है जिसमे एक दूसरे का हस्तक्षेप उन्हे स्वीकार्य नही है। बदलते नैतिक प्रतिमानो एव उद्दाम सेक्स सम्बन्धो पर कमलेश्वर की सतर्क टिप्पणी है– "औरते अब औरते है। वे झूठी सती या वेश्याए नहीं। इसलिए नयी कहानी खलनायिकाओ से शून्य है, जिनकी पहले हर कदम पर जरूरत पडती थी। अब सम्बन्धो के दो ध्रुव है– स्त्री और पुरूष जो सारी सगतियो और विसगतियो के साथ अपनी प्राकृतिक अपेक्षाओ से सीधे सम्बद्ध है। सशयग्रस्त सम्बन्धो के बिजबिजाते दल–दल अब नहीं है। नारी की देह अब उसके निर्णय की वस्तु है।" [22]

आधुनिकता मे विश्वास करने वाली नारियॉ विवाह से इतर काम सम्बन्ध रखना गलत नहीं मानती। नारी देह को पूरी तरह भोगने मे ही, जीवन की सार्थकता मानती हैं। दीति खडेलवाल की "देह की सीता" तथा "सधिपत्र", मृदुला गर्ग की "तुक" कृष्ण बलदेव वैद की "दूसरे का विस्तर नीला अँधेरा, तथा 'त्रिकोण' तथा दूधनाथ सिह की "दिनचर्या" आदि कहानियो के पात्रो मे देह–भोग की प्रबल लालसा दिखाई पड़ती है। 'देह की सीता'–की 'डा० शालिनी' एक ही पुरूष से देह सम्बन्ध को स्थापित करना स्वीकार

नही करती। उसका प्रसिद्ध कथन है– मै मोमेन्ट्स मे जीती हूँ मेजर। और मोमेन्टस की कोई फिलासफी नहीं होती।''[23] इसी तरह सधिपत्र एक ऐसे विवाहित जोडे की कहानी है जो आपस मे उन्मुक्त यौनाचार को स्वीकृति देने वाला एक अलिखित समझौता सा कर लेते है। दोनो ही 'प्रेम और 'काम' को दो अलग–अलग स्थितियो की आवश्यकताए मानते है तथा 'पति–पत्नी' दोनो ही पर नारी और पर पुरुष से शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करने का सुख प्राप्त कर लेते है।

देह की पवित्रता का अग–गणित आज पूरी तरह गडबडा गया है। स्त्री–पुरुष दोनो ही सेक्स की सतुष्टि करना देह–धर्म मानते है। उनके विचार मे देह–धर्म तभी पूर्ण होता है जब देह की कामना को सतुष्ट किया जाय। कृष्ण बलदेव वैद की कहानी "दूसरे का विस्तर" तथा "नीला अँधेरा" देह धर्म की इसी "आवश्यकता" को इगित करती हैं। "दूसरे का विस्तर" की नायिका—'सिन्थिया' एक बच्ची की मॉ होने के बाद भी अपने पति की अनुपस्थिति मे प्रेमी के साथ खुला यौनाचार करती है तो 'नीला अँधेरा' की अधेड नायिका को आज भी अपने सुगठित शरीर का "सार्थक" उपयोग न कर पाने की कसक है– "मैने कभी अपने जिस्म का पूरा फायदा नहीं उठाया। यह नहीं कि मै चाही नहीं गयी। यह भी नहीं कि मैने उसके अलावा किसी दूसरे मर्द को अपना जिस्म न दिया हो।"[24] इसी तरह 'मृदुला गर्ग' की कहानी

'तुक' मे विवाह जैसे पवित्र सस्कार का 'सेफ्टी वाल्व' के रूप मे इस्तेमाल किया गया है। कथानायिका अपने जीवन की एकरसता तोडने के लिए पर पुरूषो से सभोग करने मे सुख का अनुभव करती है।

फ्रायडवादी चिन्तन मे काम वासना की अतृप्ति को सभी समस्याओ का मूल कारण माना गया है। मनुष्य की काम प्रवृत्ति दमित होकर उसके अचेतन मे कुठा का रूप धारण कर लेती है। जो सेक्स की पूर्ति न हो पाने पर अतिरिक्त है माध्यम या साधन तलाशने लगती है। मणिका मोहिनी की कहानी "तलाश" इसे गहराई मे जाकर उद्घाटित करती है। कहानी की नायिका 'रितु' अपने पति के अलावा एक से अधिक पुरूषो के साथ यौन सम्पर्क स्थापित करना चाहती है ताकि वह भिन्न–भिन्न प्रकार से किये जाने वाले यौन आनन्द का सुख प्राप्त कर सके। यौन कुठा का यही रूप कृष्ण बलदेव वैद की कहानी 'त्रिकोण' मे दिखाई पडता जहॉ कहानी की नायिका सिर्फ इसलिए अपने पति के मित्र के साथ हमविस्तर होती है कि उसका 'पति' उसे इस स्थिति मे देख ले– "निरावरण किया जाना मुझे अच्छा लगा था। मेरी ऑखे बन्द थीं और मेरे मुह से आवाजे निकल रहीं थी और मै बराबर इस इन्तजार मे थी कि ऊपर से मेरा पति आ जाए।"[25] यहॉ विवाहेतर यौन सम्बन्ध का कारण सेक्स की अतृप्ति कम, पति को पीडा पहुँचाना ज्यादा है।

सम्बन्धो मे आया बासीपन और उससे उत्पन्न तनाव आज मध्यमवर्गीय परिवारो की नियति सा हो गया है। ऐसे वातावरण मे पति–पत्नी को छोटी से छोटी बात असह्य लगने लगती है और वे एक दूसरे पर अनावश्यक दोषारोपण करने लगते है। मोहन राकेश की कहानी 'खाली' तथा मणिका मोहिनी की कहानी 'बोरियत मे इस स्थिति का बहुत ही बारीक चित्रण मिलता है। खाली मे 'युगल और तोषी एक दूसरे को गलत सिद्ध करने मे लगे रहते है। साथ रह कर भी पति–पत्नी सहज दाम्पत्य जीवन व्यतीत नही कर पाते। उनके सम्बन्धो मे आए इस तनाव का कोई भी सामाजिक या आर्थिक कारण प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता– "जिन्दगी की हर चीज उसकी नजर मे किसी वजह से गलत थी – और वह अकेला हर गलत चीज को ठीक करने के लिए क्या कर सकता था? 'मेरी तरफ से भाड मे जाए सब कुछ – मै अकेला क्या कर सकता हूँ"?[27] कहानी कार के इस वक्तव्य से यह आभास होता है कि युगल को अपने आस–पास की सभी वस्तुओ से चिढ है जिसका कोई पुष्ट आधार नहीं है। इसी तरह मणिका मोहिनी की कहानी बोरियत मे भी पति–पत्नी के सम्बन्धो मे तनाव का कोई प्रत्यक्ष कारण दिखाई नहीं देता। दोनो के जीवन मे बोरियत का बोध जब गहराने लगता है तो इन के सम्बन्धो मे सूखापन आ जाता है। यह सूखापन उन दोनों के परस्पर वार्तालाप मे भी दिखाई देता है।

(ग) आर्थिक कारण

आज के भौतिकवादी युग मे शताब्दियो से चली आ रही मान्यताये विश्रृखलित होती गयी, तथा नैतिकता और सामाजिकता के सभी पुराने मूल्य नयी परिस्थितियो के सामने न टिक पाने के कारण असमर्थ होकर टूटते गये, इस परिवर्तित दिशा दृष्टि से हमारे पारिवारिक तथा सामाजिक रिश्ते भी प्रभावित हुए बिना, न रह सके, जिसके अन्तर्गत पति–पत्नी का रिश्ता भी सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। मार्क्स के अनुसार —— "अर्थव्यवस्था ही सामाजिक सबधो व जीवन का आधार है, इसमे परिवर्तन से सामाजिक सबध भी परिवर्तित होते है। समाज की समस्त–परमपराओ, भावनाओ, नैतिक मान्यताओ का नियमन, आर्थिक–परिस्थितियो के अनुसार ही होता है। कला, विज्ञान, धर्म और सस्कृति – ये सभी आर्थिक ढॉचे पर ही अवलम्बित है, ओर यही सामाजिक–सास्कृतिक जीवन अर्थ–मूल से जन्म लेकर उसी को शक्ति एव स्थायित्व प्रदान करता है।[28]

आज पति–पत्नी के सबधो मे जो परिवर्तन दिखायी देता है, उसके लिए किसी हद तक आर्थिक कारण भी उत्तरदायी है जिसने पति के स्वामित्व के परम्परागत मूल्य को खडित किया है। आज पति–पत्नी के एकाधिकार का वह परम्परागत मूल्य शिथिल होता जा रहा है, इस मूल्य का महत्व तभी तक था, जबकि दोनो के कार्यक्षेत्र भिन्न–भिन्न थे। एक घर की स्वामिनी थी, तो दूसरा बाहर का एकाधिकारी। लेकिन स्वातत्रयोत्तर कहानी की पृष्ठभूमि मे पति–पत्नी सबधो मे आर्थिक प्रभुत्व की भावना प्रच्छन्न रूप मे विद्यमान है।

(I) संयुक्त परिवार का दबाव तथा व्यक्ति स्वातंत्र्य की छटपटाहट

आज की शिक्षित स्त्री अपने अस्तित्व के प्रति कुछ अधिक ही जागरूक दिखायी देती है। स्वातत्रयोत्तर कहानी मे अपने व्यक्तित्व की स्वतत्र सत्ता स्थापित करने की छटपटाहट स्त्री बनाम पत्नी मे स्पष्टतया देखी जा सकती है। मन्नू भडारी की 'एखाने आकाश नाई' आर्थिक रूप से सम्पन्न एव स्वतत्र व्यक्तित्व की चाह रखने वाले ऐसे 'दम्पत्ति' की कहानी है, जिनके ऊपर सयुक्त परिवार का भार है, जिससे चाहकर भी वे विमुख नही हो सकते। परिवार के लिए मरते खपते अपने लिए चाहकर भी कुछ न सोच पाना–सास, ससुर, देवर, ननद की अपेक्षाए ओर उन्हे पूरा करने का भरसक प्रयत्न, उसे भीतर तक तोड देता है। उसकी सास कहती है—"गौरा का ब्याह करना है। हम तो बहुत कहते थे, कि इसे इतना मत पढाओ, लिखाओ। कोई नौकरी तो करवानी नही है, इससे।" ।

इसके लिए एमएम पास लडका चाहिए, कि नहीं ?

अब तुम्हीं बताओ कहा से लाऊँ? तुम्हारे पिताजी मे, तो अब दर–दर की ठोकरे खाने का दम–खम रहा नहीं लडके को दुकान से ही फुरसत नहीं। रहे रमेश, सुरेश सो उनको अपनी किताबो से ही फुरसत नहीं। घर वाल मरे चाहे जिये।" 'सबकी अपनी–अपनी उमरे है, तो लड़की को कौन पार लगायेगा ? तुम लोग यो ही घर से कट–छट कर रहते हो—बिरादरी के चार आदमियो को तुम नहीं जानते होओगे। मैं तो भइया चिन्ता के मारे रात–दिन घुली जाती हूँ।[29] लेखा समझ नहीं पा रही थी, कि क्या जवाब दे, वह सुख के जिस आकाश की छाह अपने 'दाम्पत्य जीवन' के प्रारभ से ही खोज रही थी, वह उसको कहीं भी, तो नहीं मिल पाती —'न कलकत्ते

की आपाधापी की जिन्दगी मे, न ही उस गाव मे जहा वह सुकून प्राप्त करने के लिए ही आयी थी। लेखा की यह आत्मपीडा अधिकाशतया सयुक्त परिवार का भार वहन करने वाली नौकरीपेशा बनाम पत्नी की पीडा है। जिसे चाहकर भी वो मुक्त नहीं हो सकती।

इसी प्रकार रमेश वक्षी की ईमानदार कहानी का नायक भी एक ओर सयुक्त परिवार की जिम्मेदारियो एव दूसरी ओर ऑफिस मे बाबू होने के कारण दोनो फाइलो मे व्यस्तता इन दोनो के बीच उलझकर और बच्चो तथा पत्नी एव प्रेमिका के बीच फसकर न पत्नी का ही पूर्ण रूप से हो पाता है, न ही प्रेमिका का। इससे उसका दाम्पत्य जीवन इतना नीरस हो जाता है, कि —"गुड्डा एक घटे से लगातार रो रहा है, बीबी बहुत परेशान है। निहायत गदी साडी पहने पसीने से तर–बतर। बालो पर राख चिपकी है। मगल सूत्र गुड्डे को बार–बार उठाने मे गोल घूम गया है ।[30] इससे यह स्पष्ट होता है, कि नायक आर्थिक दबाव एव प्रेमिका के कारण पत्नी के ऊपर पूर्णतया ध्यान नहीं दे पाता, जिसके कारण उनका दाम्पत्य जीवन भावशून्य एव निष्प्राण हो गया।

स्त्री शिक्षा एव प्राप्त नौकरियो ने आज स्त्री को एक–आत्मविश्वास, आर्थिक सुरक्षा और आर्थिक सक्षमता प्रदान कर उसे यह अहसास करा दिया है, कि वह किसी भी दृष्टि से पुरुष से हीन नहीं है। इस आर्थिक स्वतत्रता ने स्त्री को काफी हद तक स्वच्छद बना दिया है। फलस्वरूप दोनो के बीच कलह उत्पन्न होता है, और दूरी बढने लगती है—'गिरिराज किशोर' की 'फ्राक वाला घोड़ा, निकर वाला साईस' मे पति साधारण 'क्लर्क' है और पत्नी 'डिप्टी सेक्रेटरी'। पति से अधिक कमाने वाली रीता अपने व्यक्तिगत सबधो में आर्थिक महत्व की प्रतिष्ठा करती हुयी कहती है—"आप पुरुष लोग समझते हैं, जो कुछ आप कमा कर लाते है, उसके

कारण हम लोग आप लोगो का सम्मान करते है, और इसी कारण आप लोग अपने आपको स्वतत्र रख पाने मे समर्थ है। लेकिन आज व्यक्तिगत सबधो का भी आर्थिक महत्व अधिक है। अगर मै आपसे छ गुना कमाती हूॅ, तो छ गुना बडी भी हूॅ ।'[31] ऐसे सघातिक क्षणो मे पारम्परिक मान्यताओ मे विश्वास करने वाला पति कहता है "रीता तुम्हे मालूम है क्या कह रही हो ? भारतीय सभ्यता यही है कि घर का पुरुष चाहे एक आना कमा कर लाये, उससे परिवार का एक धर्म बनता है, परम्परा और सस्कार बनते है। स्त्री के धन से कुसस्कार जन्म लेते है।'[32] वह पति से अधिक कमाती है, उसकी सोसायटी अलग है, जिसमे एडजस्ट' होने के लिए पुराने मूल्यो को त्यागना आवश्यक है— आप यह कैसे समझते है, कि मै दिन भर आपसे बधी बधी डोलूॅ। मेरी सोसायटी मे आप फिट नही हो पाते, और आपकी सोसायटी मे

मेरा तो सवाल ही नही उठता।"[33] 'नागरथ जो उसका प्रेमी है, उससे सबध बनाने मे उसका जरा भी हिचकिचाहट नही होती उससे अपने पति के विषय मे कहती है —'हीन है, हीनता उसमे कूट–कूट कर भरी है, मुझे उससे घृणा है।[34] यह भी परम्परित मूल्य का अस्वीकार ही है। जहॉ न दाम्पत्य सबधो पर कोई विचार है, न उसकी परवाह। अत दाम्पत्य केन्द्रित इस कहानी मे पति एक महत्वहीन, महज औपचारिक और निष्प्राण आकृति बनकर रह जाता है। 'दीप्ति खण्डेलवाल' की 'ये भी कोई गीत है' कहानी की नायिका 'दीपाली' मे भी, 'गिरिराज किशोर' की 'फ्राक वाला घोडा–निकर वाला साइस' की नायिका 'रीता की ही तरह, आर्थिक स्वतत्रता के कारण उत्पन्न स्वच्छदता का चित्र दिखायी देता है। इस स्वतत्रता के कारण ही वह अपने पति का अपमान तक करने से नहीं हिचकिचाती, जिसको उसका पुरुषोचित अह बर्दाश्त नहीं कर पाता। इन्द्रनाथ (पति) का अर्न्तपुरुष तिलमिला कर दीपाली से पूछता है —"तुम मुझे बेवकूफ कह रही हो दीपाली। इसलिए कि आज तुम हजारों कमाने वाली एक प्रसिद्ध सर्जन हो और मै

सिर्फ पाच सौ कमाने वाला प्रोफेसर ।[35] ग्रोथ' कहानी मे 'शशिप्रभा' शास्त्री मे इसी विषय को अलग जरिये से व्यक्त किया है। उसमे पति अपने से ज्यादा कमाने वाली पत्नी को बर्दाश्त नहीं कर पाता, ओर अह को तुष्ट करने के लिए 'वह ताश खेलने की आदत नही है फिर भी फ्लैश खेलता है शराब पीता है रात–रात भर घर से बाहर रहने लगता है। सो इस तरह यह सतुष्ट होने का ढोल पीटते रहे और सन्तुष्ट होते रहे।'[36] पति का अह इतने पर भी सतुष्ट नही हो पाता। वह पत्नी के आफिस के हर व्यक्ति को उसका यार–दोस्त करार देता है, और उसके सभी प्रकार के सबधो को सेक्स के सदर्भ मे ही परखता है—"मुझे देखने का तो बहाना है, ये सब लोग तेरी खातिर आते हैं।"[37]

शशिप्रभा शास्त्री की एक अन्य कहानी मे 'बीच की कडियो की सुषमा मे भी स्वाभिमान एव खुलापन दिखायी देता है, वह पति से ज्यादा कमाती भी है, पर उसको कभी बुरा भला नहीं कहती। उसके घर के काम मे तथा नौकरी के काम से बाहर जाने मे भी उसका पति उसका सहयोग करता—"रोटी बनवाने, कपडे धुलवाने, बर्तन मजवाने, चाय का काम तो पूरी तरह उसी के जिम्मे था।'[38] अत देखा जा सकता है, कि उनका दाम्पत्य जीवन सुखी एव सामजस्यपूर्ण था। उनके बीच किसी प्रकार के एकाधिकार या पुरुषोचित अह की जैसी कोई बात दिखायी नहीं देती। फिर भी स्तर भेद के आधार पर लिखी गयी इन कहानियो मे पति–पत्नी के अह की टकराहट सदैव बनी ही रहती है, जिसमे पत्नी सदैव अपने को श्रेष्ठ ही नहीं बल्कि पूर्ण पत्नी कहलवाना चाहती है जिससे उनका दाम्पत्य टूट कर बिखर जाता है।

अपने स्वातंत्र्य एव सपूर्णता की चाह मे, तथा कहीं आर्थिक दबाव मे पत्नी 'माँ' नहीं बनना चाहती, या नहीं बन पाती जो उसे अधूरेपन का प्रतीक है। जिसका स्पष्ट रूप 'कडियाँ' (दिनेश पालीवाल) में देखा जा सकता है। सयुक्त परिवार की जिम्मेदारियो

और आर्थिक अभावो के कारण सतान नहीं चाहता, जिससे उसके दाम्पत्य जीवन मे तनाव एव कडवाहट पैदा होती है। मातृत्व की चाह मे पत्नी, पति के सारे तर्कों को बेकार करती हुई कहती है —– क्या हमारी जैसी आमदनी वालो के घर एक भी बच्चा नही होता——? होता क्यो नही है लेकिन ।

लेकिन–वेकिन नहीं साफ–साफ कहो कि तुम मुझे अपनी पत्नी नहीं नौकरानी की तरह मानते हो और यहॉ सबके गू–भूत करने के लिए लेकर आये हो। दुनिया के आदमी देखे है। जहॉ नौकरी करते है, वहीं अपनी बीवी ओर बच्चो को रखते है। लेकिन तुम तुम जैसा कपटी आदमी मैने आज तक नही देखा।''[39] कहानी मे भीतर ही भीतर घुमडते हुए क्षोभ और असतोष, से उनके दाम्पत्य जीवन मे अव्यवस्था तो पैदा होती है, लेकिन उससे कोई अनर्थ नहीं होता। मातृत्व की चाह और न प्राप्त होने पर पत्नी द्वारा विद्रोह की एक झलक 'मेरा (मृदुला गर्ग) मे दिखायी देता है, जिसमे पति भावी उन्नति के लिए सतान नही चाहता, और अपनी पत्नी 'मीता' से 'एर्बाशन' करवाने को कहता है। पहले पत्नी पति की इच्छा के आगे विवश हो अस्पताल जाती है परन्तु वहॉ पहुॅचने पर उसका मातृत्व फिर से जागृत हो उठा और वह एक विद्रोही की तरह अपने मातृत्व के अधिकार की रक्षा करते हुए कहती है—'यह मेरा निजी मामला है, मैं एबार्शन नही करवाऊॅगी।[40] इस प्रकार वह अपने व्यक्ति–स्वातत्रय का परिचय देती है। पत्नी यदि अपने व्यक्ति–स्वातत्रय को प्राप्त कर लेती है, वह अपनी स्थिति को सार्थक अनुभव करती है, किन्तु अधिकाशतया कहानियो मे उसको, उस पीडा का बोध होता है, जो पुरुष–सत्तात्मक समाज मे उसको अपने 'स्व' को खोकर झेलनी पड़ती है।

(II) पति की महत्वाकॉक्षा के दॉव पर पत्नी की अस्मिता

एक समय था जब 'पति अपनी सुन्दर पत्नी को सात परदो मे रखकर बुरी नजर से बचाता था व्यावसायिकता के इस युग मे परिस्थितियो मे व्यापक परिवर्तन के फलस्वरूप कुछ परिवारो मे पत्नी की नयी भूमिका भी दिखायी देती है कि, 'पति' आज उसका 'इस्तेमाल' तक करने मे नही हिचकिचाता – चाहे वह परिवार की आर्थिक स्थिति मे सुधार के लिए हो या स्वय पति की भावी उन्नति के लिए। मृदुला गर्ग की कहानी—'दुनिया का कायदा' मे —'पत्नी व्याख्याता है, और पति बिजनेस करता है। रक्षा तो अपने इस जीवन से सतुष्ट है, परन्तु पति–सुनील की उच्चाकाक्षाओ का अत नहीं है। पति उसके सौन्दर्य का शोषण करते हुए, उसको वह सब करने के लिए विवश करता है, जो उसको पसन्द नहीं है। 'मिस्टर मेहता' नामक एक व्यक्ति है, जिनसे 'सुनील' का काम होना है। 'सुनील' उसको उन्मुक्त स्वभाव को जानते हुए भी रक्षा को उसके साथ डान्स करने के लिए विवश करता है और वह भौतिकवादी जिन्दगी की चाह मे, अपनी पत्नी से कहता है—"नाचने मे थोडा बहुत तो यह सब चलता ही है, मुझे तुम पर गर्व है, मैं खुद नहीं चाहता मेरी चीज पर कोई ऑख उठा कर देखे लेकिन हमारी प्रगति के लिए आवश्यक है सभ्य समाज का यही कायदा है खरीद–फरोख्त, नौकरी पेशा, सब खाने की मेज के इर्द–गिर्द, शराब की गिलास हाथ मे लेकर तय होते हैं।"[41] पुरुष तो इन स्थितियो को नहीं झेल पाता, परन्तु पत्नी आज भी सात फेरो के बन्धन की पावनता मे विश्वास करते हुए, पति की अनुचित माग भी पूरा करने को विवश है।

इसी प्रकार विष्णु प्रभाकर की 'ठेका'[42] कहानी मे भी पति यही चाहता है, कि उसकी पत्नी बड़े–बड़े लोगों मे उठे–बैठे,

मिले–जुले, जिससे उसकी उन्नति का मार्ग प्रशस्त हो। परन्तु जब 'पत्नी' खुद उसके ऑफिसर से मिलने चली जाती है, तो उसका पुरुषोचित अह एव पुरुष सत्तात्मक समाज के बनाये हुए नियम तथा नैतिकता के वे सभी परम्परागत मूल्य आडे आने लगते है जिसको उसके पति ने अपने फायदे के कारण नजरअन्दाज कर दिया था। यह स्थिति दूसरे ही क्षण एकदम परिवर्तित हो जाती है–जब उसकी पत्नी 'ठेके' की स्वीकृति लाकर उसके मुँह पर फेक देती है। वह सारे क्रोध भुलाकर प्रसन्नता से झूम उठता है। अत कहा जा सकता है कि आधुनिक युग मे, किस प्रकार परम्परागत नैतिक मूल्य महत्वहीन होते जा रहे है, पत्नी किस प्रकार उन मूल्यो और परम्पराओ को ढोने के लिए विवश है, लाचार है, जिससे पति के प्रति उसकी भावनाए समाप्त हो जाती है, उसका अन्तर्मन पीडा से कराह उठता है। उनके दाम्पत्य जीवन पर भी दिखायी देता है।

(III) आर्थिक संकट और पत्नी की मजबूरी

भौतिकवादी युग मे अर्थ ही जीवन की अनिवार्य आवश्यकता है उसके अभाव मे पति–पत्नी के बीच तनाव एव सशय जैसी स्थितिया सहज ही उत्पन्न हो जाती हैं, जिसका प्रभाव उनके दाम्पत्य जीवन पर भी होता दिखायी देता है। पत्नी को तो पति एक यत्र समझता है, और उससे अपेक्षा करता है, कि पति की इच्छा या अनिच्छा का सदैव ध्यान रखे, तथा जितनी भी आर्थिक विपन्नता हो बिना पति की इच्छा के वह 'नौकरी तो बडी चीज है, कुछ भी नहीं कर सकती। आर्थिक विपन्नता से सत्रस्त, पति–पत्नी के मध्य उभरते तनावों का चित्रण 'दीप्ति खडेलवाल' ने अपनी कहानी 'जमीन' मे व्यक्त किया है—जिसमे एक निम्नवर्गीय माँ अपने मातृत्व को भूलकर दूध पीते बच्चे के लिए कहती है—"काए पिलाऊ? मरा मैरा खून ही पीने को है।"[43] आर्थिक यातना सहती

हुयी उस माँ की उस गृहणी की आवश्यकताए कोई भी पूरी नही कर सकता स्वय उसका पति भी नही, और न ही उसको वह उसका पति नौकरी ही करने देता है, जिससे वह अपेक्षित धन कमा सके। बात–बात पर पति द्वारा पैर से मारी जाती है पीडा सहती है, और भूखी रहती है तब अपना दबा हुआ आक्रोश प्रकट करती हुयी कहती है–––"लेकिन तू तो तहसीलदार है, मेहरिया को काम नहीं करने देगा भूखा मरेगा, मेरा खून पीयेगा राच्छस।'[44] पति उसका प्रतिउत्तर देते हुए कहता है––"फिर साली ने नौकरी का नाम लिया इज्जत देगा।"[45] पति का यह सस्कार पूरे परिवार को भूखा रख देता है पर पविर्तन की आवश्यकता के साथ समझौता नही करता। इसी प्रकार 'मेहरून्निसा परवेज' की कहानी 'एक ओर सैलाब' की नायिका 'नीलू' भी दोहरी जिम्मेदारियो से घिरी हुयी है–––एक तरफ बच्चे है, तो दूसरी तरफ अस्पताल मे बीमार पति। ऊपर से आर्थिक सकट भी विद्यमान है। ये सब झेलते–झेलते 'नीलू' हताश होकर एकदम टूट जाती है। पति की बीमारी उसे पारिवारिक बोझ से ज्यादा आत्मपीडा पहुँचाती है। उसकी सेवा–सुश्रुषा करते हुए 'नीलू' एकदम निराश सी हो जाती है, अन्तत नींद की गोलिया खिलाकर उसे हमेशा –हमेशा के लिए सुला देती है। " "मैने ही उन्हें नींद की गोलिया दे दी थीं। मैं बहुत मजबूर हो गयी थी, उमेश। भाग–दौड करते–करते मै थक गयी थी।"[46] यहाँ यह देखा जा सकता है, कि आर्थिक विपन्नता के कारण पत्नी, इतनी निर्मम एव क्रूर हो जाती है, कि जिस पति के साथ जन्मजन्मान्तर तक साथ निभाने की कसमे खायी थी, उसे ही मौत की नींद सुला देने को विवश है।

इसी भाव–भूमि को छूती हुयी, 'दिनेश पालीवाल की कहानी 'सरक्षक'[47] मे आर्थिक सकट एव जिम्मेदारियो के कारण पति अपनी ठड से ठिठुरती बच्ची पर भी ध्यान नहीं दे पाता। पत्नी अपने कानों का कुडल बिकवाकर अपनी बच्ची के लिए ऊन मगवाती है,

"क्यो ? सिर्फ अपनी लडकी के लिए। मुझसे नहीं देखा जाता, उसका ठड से कॉपना ।"[48] बचे हुए पैसे को पिता के आपरेशन के लिए मागे जाने पर पत्नी है— ये भी कोई बात हुयी और अगर वे न होते तो क्या करते ? भाग्य मे जो कुछ बदा होगा भोगते और क्या करते ? हर प्रकार से प्रतिरोध करने के पश्चात उसके आक्रोश की परिणति उसके मुँह पर नोट फेक देने मे होती है— लो, बस । अब तो छाती ठडी हो जायेगी। तुम सब खुश रहो । हमारा क्या है । हम मरे या जिएँ । भाड मे गिरे, किसी को कया मतलब ।[49] कहानी मे पत्नी मे भीतर घुमडता हुआ क्षोभ ओर असतोष दाम्पत्य जीवन मे अव्यवस्था तो पैदा करता है, लेकिन अन्तत पत्नी उन परम्पराओ एव मान्यताओ मे बधी हुयी सब कुछ मूल भाव से सहती हुयी, पति का साथ निभाती चली जाती है।

इस प्रकार आधुनिक समाज मे दाम्पत्य सम्बन्ध या तो टूट रहे हैं या उनके आपसी प्यार और समर्पण मे दरार आ गयी है। अर्थ प्रधान भौतिकवादी युग मे मनुष्य की उच्चाकाक्षा की पूर्ति की अभिलाषा मे शान्ति मृगमरीचिका हो गयी है। पारिवारिक तनाव का कारण कहीं अर्थाभाव है, तो कहीं पत्नी का नौकरी पेशा होना। दोनो ही स्थितियो मे सम्बन्धो की आत्मीयता इस युग मे प्रभावित हुई है।

पाद-टिप्पणी

1 सीमोन द बोवूआर – स्त्री उपेक्षिता, प्रस्तुति सदर्भ, पृष्ठ 21

2 डॉ ममता शुक्ला – मन्नू भडारी के कथा साहित्य का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन पृष्ठ 192

3 राजेन्द्र यादव – किनारे से किनारे तक पृष्ठ 67

4 मेहरून्निसा परवेज –"अयोध्या से वापसी" (अन्तिम चढाई) पृष्ठ 27

5 पुष्प पाल सिंह – समकालीन हिन्दी कहानी का युगबोध का

सन्दर्भ पृष्ठ 158

6 मन्नू भडारी 'ऊँचाई' (एक प्लेट सैलाब) पृष्ठ 137 पृ 137

7 दूधनाथ सिह – 'रीछ' (सपाट चेहरे वाला आदमी) पृ 17

8 डॉ० रामकमल राय – अपने कितने अपने – भूमिका

9 मधुरेश – नयी कहानी पुनर्विचार पृ 229

10 पृथ्वीनाथ पाण्डेय (स) अस्तित्व की तलाश।–सिमटती जिन्दगी–निर्मला अग्रवाल।

11 बलराम – अनचाहे सफर, हिन्दी की पुरस्कृत कहानिया, सपादक – श्रीकृष्ण पृष्ठ 98

12 चित्रा मुद्‌गल –शून्य, असफल दाम्पत्य की कहानिया – पृष्ठ 87

13 दिनेश पालीवाल – पुल (दुश्मन) – पृ 38

14 शशि भूषण शीताशु – नयी कहानी के विविध योग

15 डा मोनिका हारित – समकालीन हिन्दी कहानी मे समाज सरचना, पृष्ठ 60

16 डा सुखदेव शुक्ल – हिन्दी उपन्यास का विकास और नैतिकता पृष्ठ 313

17 कान्ता अरोडा – हिन्दी कहानी का मूल्याकन – पृष्ठ 180

18 राजेन्द्र यादव – टूटना पृष्ठ 165

19 मधुरेश – नयी कहानी पुनर्विचार, पृष्ठ 48

20 मोहन राकेश – एक और जिन्दगी (वारिस) पृष्ठ 12–13

21 डा प्रमिला कपूर – 'विवाह, सेक्स तथा प्रेम', पृष्ठ 280

22 प्रभा सक्सेना, समकालीन महिला कथा लेखन, (मधुमती अक दो) फरवरी 88, पृष्ठ 34

23 दीप्ति खंडेलवाल – देह की सीता (कड़वे सच)

24 कृष्ण बलदेव वैद – नीला अधेरा (दूसरे किनारे से) पृष्ठ 87

25 वैद की सम्पूर्ण कहानियॉ – मेरा दुश्मन, त्रिकोण, पृष्ठ 326

26 दूधनाथ सिह – दिनचर्या, (पहला कदम) पृष्ठ 218

27 मोहन राकेश – 'खाली पृ 45

28 डा मोनिका हारित – समकालीन हिन्दी कहानी मे समाज सरचना पृ 65

29 मन्नू भडारी – एखाने आकाश नाई (त्रिशकु) पृष्ठ 191–192

30 रमेश बक्षी – ईमानदार कहानी (एक अमूर्त तकलीफ) पृ 26

31 गिरिराज किशोर – 'फ्राक वाला घोडा, निकर वाला साईस (पेपर वेट) पृ 100

32 वही पृष्ठ 101

33 वही पृष्ठ 97

34 वही पृष्ठ 102

35 दीप्ति खडेलवाल – ये भी कोई गीत है–(कडे सच) – पृष्ठ 50

36 शशि प्रभा शास्त्री – ग्रोथ (अनुत्तरित) पृष्ठ 23

37 वही पृष्ठ 24

38 शशि प्रभा शास्त्री – बीच की कडिया – (धुली हुयी शाम) पृष्ठ 69

39 दिनेश पालीवाल – कडियॉ (दुश्मन) पृष्ठ 112–113

40 मृदुला गर्ग (डेफोडिल जल रहे हैं) मेरा

41 मृदुला गर्ग – दुनिया का कायदा

42 विष्णु प्रभाकर – 'ठेका'

43 दीप्ति खडेलवाल – जमीन (वह तीसरा) पृष्ठ 37

44 वही पृष्ठ 39

45 वही पृष्ठ 39

46 मेहरून्निसा परवेज – एक और सैलाव (आदम और हव्वा)

47 दिनेश पालीवाल – सरक्षक (दुश्मन) पृ 98

48 दिनेश पालीवाल – सरक्षक पृष्ठ 98

49 वही पृष्ठ 98

षष्ठ अध्याय

संदर्भित कहानियों में व्यंजित मूल्य बोध और सामाजिक दृष्टि

(क) मूल्य की परिभाषा तथा अभिप्राय

(ख) मूल्य परिवर्तन एवं उन्हें प्रभावित करने वाले घटक

(i) विज्ञान एव तकनीक का प्रभाव

(ii) औद्योगीकरण एव अर्थाधारित समाज व्यवस्था

(iii) अस्तित्ववादी चिन्तन का प्रभाव

(iv) फ्रायडवादी चिन्तन का प्रभाव

(v) मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव

(ग) संदर्भित कहानियों में बदलते जीवन मूल्यों का प्रभाव

(i) नैतिक मूल्यों पर प्रभाव

(ii) सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यो पर प्रभाव

षष्ठ अध्याय

(क) मूल्यबोध – अभिप्राय तथा परिभाषा

भारतीय सास्कृतिक परम्परा मूल्यो से अभिप्रेत रही है। प्राचीन काल से ही यहाँ समाज, धर्म, राजनीति एव कला मूल्य–सापेक्ष रहे हैं। व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'मूल्य' शब्द 'सस्कृत' की मूल धातु से बना है जिसका अर्थ है – कीमत।[1] अग्रेजी मे इसका पर्याय है वैल्यू, जिसकी उत्पत्ति 'लैटिन' शब्द वैलर (valure) से हुई है, जो अच्छा या सुन्दर का वाचक है। मूलत यह अर्थशास्त्र का एक पारिभाषिक शब्द है, जिसका अर्थ है – विनिमय क्षमता। लेकिन वर्तमान युग मे मूल्य शब्द केवल अर्थशास्त्र तक ही सीमित नही रहा, उसका अर्थ–विस्तार हुआ है।

श्री आर के मुखर्जी ने 'मूल्य' को परिभाषित करते हुए लिखा है —"जो कुछ भी इच्छित या वाछित है वही मूल्य है।'[2] बीसवीं शताब्दी मे मूल्य का अर्थ विस्तार हुआ और अब यह मान, प्रतिमान व मानदड के अर्थ मे प्रयुक्त होने लगा है। यद्यपि मूल्य व मापदड में अन्तर है। एक व्यवहार का नियम है तो दूसरा इच्छा योग्य के मापक का।' समाज शास्त्र के अन्तर्राष्ट्रीय विश्वकोष के अनुसार मूल्य की सर्वाधिक ग्राह्य परिभाषा इस प्रकार की जा

षष्ठ अध्याय

(क) मूल्यबोध – अभिप्राय तथा परिभाषा

भारतीय सास्कृतिक परम्परा मूल्यो से अभिप्रेत रही है। प्राचीन काल से ही यहॉ समाज धर्म, राजनीति एव कला मूल्य–सापेक्ष रहे है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'मूल्य' शब्द 'सस्कृत की मूल धातु से बना है, जिसका अर्थ है – कीमत।[1] अग्रेजी मे इसका पर्याय है वैल्यू, जिसकी उत्पत्ति 'लैटिन' शब्द वैलर (valure) से हुई है, जो अच्छा या सुन्दर का वाचक है। मूलत यह अर्थशास्त्र का एक पारिभाषिक शब्द है, जिसका अर्थ है – विनिमय क्षमता। लेकिन वर्तमान युग मे मूल्य शब्द केवल अर्थशास्त्र तक ही सीमित नहीं रहा, उसका अर्थ–विस्तार हुआ है।

श्री आर के मुखर्जी ने 'मूल्य' को परिभाषित करते हुए लिखा है —"जो कुछ भी इच्छित या वाछित है वही मूल्य है।'[2] बीसवीं शताब्दी मे मूल्य का अर्थ विस्तार हुआ और अब यह मान, प्रतिमान व मानदड के अर्थ मे प्रयुक्त होने लगा है। यद्यपि मूल्य व मापदड मे अन्तर है। एक व्यवहार का नियम है तो दूसरा इच्छा गेग्य के मानक का। समाज शास्त्र के अन्तर्राष्ट्रीय विश्वकोष के अनुसार मूल्य की सर्वाधिक ग्राह्य परिभाषा इस प्रकार की जा

सकती है "मूल्य वाछनीयता (अभीष्ट) की ऐसी धारणाए हैं, जो श्रेष्ठ व्यवहार को प्रभावित करती है।[3] इस परिभाषा मे जो 'इच्छा की जाती है' और जो इच्छा करनी चाहिए का अन्तर रखकर मूल्य को वस्तु स्थिति से अलग रखा गया है।

किसी भी इच्छा जनित विश्वास या धारणा को भी मूल्य कहा गया है। मूल्य का विस्तार से सुस्पष्ट विवेचन करते हुए प्रसिद्ध विद्वान–'क्लाइडे क्लुखोन' ने कहा है कि 'मूल्य किसी व्यक्ति अथवा समूह की अभिप्रेत अथवा अवाछनीयता की ऐसी व्यक्त अथवा अव्यक्त धारणा है जो प्राप्य साधनो और कार्य के उद्‌देश्य के बीच चुनाव को प्रभावित करती है।[4] इस परिभाषा मे क्लुखोन ने वस्तुस्थिति और वाछनीय स्थिति का अन्तर स्पष्ट करते हुए मूल्य को वाछयीनयता से सयुक्त किया है।

मूल्यो मे दिशा–निर्देश का गुण होता है। जब मूल्य स्पष्ट और पूरी तरह से आत्मसात हो जाते है तब वे मापदड का कार्य करते हैं। प्रकारान्तर से जीवन की महानतम वास्तविकता को समझने के प्रयास के परिणाम मे मूल्यो की अवस्थिति है जिनके आधार पर व्यक्तित्व, समाज की सरचना, धर्म, सस्कृति व सभ्यता का निर्माण होता है। डा रमेश कुन्तल मेघ ने मूल्य–चिन्तन सम्बन्धी समस्त विचार सूत्रो का समाहार करते हुए लिखा है —"मूल्य मे हमेशा सम्बन्ध अतनिर्हित होता है, यह आगमन–निगमन तथा कार्य–कारण

श्रृखला से वधा रहता है यह आत्मनिष्ठ और बहुनिष्ठ तत्वो से निर्मित एक अशी है यह ऐच्छिक चुनाव से निर्मित एक अशी है यह ऐच्छिक चुनाव से निवेशित होता है।"[5]

'मूल्य मनुष्य द्वारा निर्मित व्यक्ति द्वारा स्वीकृत और समाज द्वारा पोषित एव रक्षित है।[6] इनका उद्देश्य उदात्त व्यक्ति और स्वस्थ समाज का निर्माण करना है। मानवीय सम्बन्धो के निर्वाह के साथ-साथ मूल्यवत्ता की महत्ता सुरक्षित रहती है। 'रामधारी सिह दिनकर' मूल्य के सम्बन्ध मे अपना विचार स्पष्ट करते हुए लिखते है — "मूल्य आचरण के सिद्धान्तो को कहते है, मूल्य वे मान्यताएँ है, जिन्हे मार्गदर्शक ज्योति मानकर सभ्यता चलती है और जिनकी उपेक्षा करने वालो का परम्परा, अनैतिक, उच्छृखल या बागी कहती है, किन्तु कभी-कभी ऐसा भी होता है, कि पुराने मूल्यो की प्रतिष्ठा करने वाले लोग भगवान बन जाते है। अतएव साहित्य मे मूल्यो का विवेचन असल मे नैतिकता व परम्परा का विवेचन माना जाता है।[7] अज्ञेय किसी वस्तु के प्रति आकर्षण या विकर्षण की वैयक्तिक अभिव्यक्ति को मूल्य मानते हैं[8] तो डॉ जानसन की दृष्टि मे "मूल्य धारणा या मान है, जिसके द्वारा एक-दूसरे की तुलना मे उचित-अनुचित, अच्छा या बुरा, ठीक या गलत माना जाता है।"[9]

मनुष्य एक विवेकशील प्राणी है और इसी विवेक से वह जीवन मूल्यो से जुड़ता है। मूल्य समाज सापेक्ष होते है, दूसरे शब्दो मे समाज ने मानव जीवन को बेहतर बनाने की जो मान्यताए

अथवा मानदड निर्धारित किये उन्हे मूल्य कहा जाता है। प्रभा सक्सेना के अनुसार —"मेरी अपनी समझ मे मूल्य वे अवधारणाए है, जो जीवन को नियत्रित व गतिशील बनाए रखकर मनुष्य को विपरीत व विषम परिस्थितियो मे सघर्ष करने की प्रेरणा देती है व जीवन को उदात्त, सुन्दर व मगलमय बनाने मे योगदान करती है।" 10

उपर्युक्त परिभाषाओ के आलोक मे यह कहा जा सकता है कि मूल्य मानव समाज द्वारा व्यक्ति के विकास के लिए निर्धारित किए गये वे मानदण्ड है, जिन पर चलकर वह अपने जीवन मे सुख एव समृद्धि अर्जित करता है। मूल्य रहित जीवन प्रणाली मनुष्य के भौतिक एव आध्यात्मिक उन्नति मे बाधा पहुँचाती है। भारत वर्ष सदैव से धर्म अनुप्राणित देश रहा है इसलिए यहॉ विभिन्न मूल्यो को नैतिकता के आवरण से वेष्ठित कर दिया गया। सत्य, शिवम्, सुन्दरम' की अवधारणा को अक्षुण्य बनाए रखने की दिशा मे भारतीय मनीषा का स्थाई योगदान है।

(ख) मूल्य परिवर्तन एवं उन्हें प्रभावित करने वाले घटक

मूल्य—परिवर्तन एक ऐतिहासिक प्रक्रिया है। "युगीन परिस्थितियो के अनुरूप ही, सामाजिक सन्दर्भ तथा सम्बन्ध भी परिवर्तित होते रहते हैं, और किसी समय अत्यत सार्थक लगने वाले मूल्य धीरे—धीरे अर्थहीन लगने लगते हैं। आज की हिन्दी कहानी

इन्ही परिवर्तित मूल्यो से उत्पन्न सघर्ष की कहानी है। इसमे एक ओर परम्परागत मूल्यो के प्रति क्षुब्ध आक्रोश का स्वर सुनाई देता है तो दूसरी ओर कुछ नवीन मूल्यो की सर्जना का सकेत भी मिलता है।'[11] आधुनिक मनुष्य सामाजिक दबावो से निरपेक्ष स्वतत्र अस्तित्व की प्रतिष्ठापना के लिए सघर्षरत है। आत्मबोध ने व्यक्ति के भीतर स्वतत्र अस्तित्व की इच्छा और सघर्ष चेतना उत्पन्न की है। परिणाम स्वरूप व्यक्ति की स्वत्व चेतना ने युगो–युगो से स्थापित मूल्यो को अप्रासगिक घोषित कर दिया है। इसमे निराशापूर्ण दिशाहीन, निरर्थकता बोध से ग्रस्त आत्म निर्वासन की भूमि पर अवस्थित निस्सग मानव को महत्व मिला है जो आस्थाशील मानव समाज के समक्ष कोई आदर्श प्रस्तुत नहीं करता।"[12]

साहित्य मे मूल्य और आदर्श युग की आवश्यकतानुसार बदलते और निर्मित होते हैं। दो महायुद्धो के बीच विकसित भारतीय मानव चेतना ने आजादी के साथ ही विभाजन का अभिशाप भी झेला है। यात्रिकता, सशय, भ्रष्टाचार और असन्तोष की व्यापकता के साथ ही आस्थाओ को टूटते, विश्वासो को बिखरते और सम्बन्धो को छिटकते देखा।[13] इस टूटने और बिखरने की प्रक्रिया मे आत्मीय सम्बन्धो का आधार प्रेम समाप्त होता गया तथा सम्बन्धो मे त्याग के स्थान पर स्वार्थ प्रमुख होता चला गया। हमारे प्राचीन सामाजिक एव पारिवारिक मूल्य टूटने लगे तथा नवीन मूल्य पूरी तरह हमारे सामाजिक ढाँचे मैं ढल नहीं पाए, फलस्वरुप कही मूल्यहीनता की

स्थिति उत्पन्न हो गयी तो कहीं मूल्यो मे विकृति दिखाई देने लगी। सामाजिक मूल्यो मे आए गतिरोध और स्खलन के उत्तरदायी कारणो को निम्न शीर्षको के अन्तर्गत रेखाकित किया जा सकता है।

(I) विज्ञान एव तकनीक का प्रभाव

विज्ञान एव तकनीकी ज्ञान ने हमारे सामाजिक जीवन वैचारिक जगत दृष्टिकोण एव मान्यताओ मे एक विद्रोह युक्त नवीनता को विकसित कर सारी परम्पराओ एव आस्थाओ के सामने प्रश्न चिन्ह लगा दिया। प्राचीन काल की सभी सभ्यताओ एव धर्मों मे ईश्वर की कल्पना की गयी, और उसे सृष्टि का निर्माता एव नियन्ता माना गया है। यहाँ तक कि हमारे सामाजिक सरोकार और नैतिक नियम भी धर्म के मूल सिद्धान्तो पर आधारित होने लगे। लेकिन इन धार्मिक रूढियो पर विज्ञान ने प्रहार किया। "मनोवैज्ञानिको का कहना है कि धार्मिक विश्वास व्यक्तित्व मे दुर्बलता का लक्षण है। जबकि विज्ञान का आधार ही तर्क है। 'आइन्सटीन' ने स्पष्ट कहा है —'धर्म के प्रतिनिधियो को चाहिए कि, भय एव आशा के स्रोत परित्याग करके उसको स्वीकारे जो मानवता मे सत्य है और सुन्दर है।" 14

विज्ञान ने जहाँ मानव जीवन को आध्यात्मिक सुविधा सम्पन्न और द्रुतगामी बनाया, वहीं मनुष्य के विवेक पर भी गम्भीर प्रहार किया है। विज्ञान ने हमारी निष्ठा को प्रभावित कर हमे

उपभोक्तावादी जीवन–दृष्टि प्रदान किया। हमारी सामाजिक निष्ठा भय पर आधारित थी, और विज्ञान ने हमे भयमुक्त वातावरण प्रदान किया, जिससे हमारे सामाजिक और पारिवारिक मूल्यो मे विश्रृखलता आ गयी जिसके फलस्वरुप प्रेम, करूणा निष्ठा और सौहार्द्र जैसे मूल्य टूट कर बिखरने लगे। इन जीवन–स्थितियो मे सौन्दर्य, सुख और आनन्द, सामाजिक न्याय आदि के मूल्य और धारणाए परिवर्तित हो गयी है।

(II) औद्योगीकरण एव अर्थाधारित समाज व्यवस्था

सोलहवी–सत्रहवी शताब्दी मे युरोप मे हुई औद्योगिक क्रान्ति ने सामाजिक जीवन प्रणाली एव अर्थव्यवस्था मे जो व्यापक परिवर्तन किया, उसका प्रभाव भारत पर भी काफी गहरा पडा। औद्योगीकरण ने महानगरीय परिवेश को जन्म दिया। विदेशी चकाचौध का अनुसरण करती महानगरीय सभ्यता ने हमारे पुरातन मूल्यो और सस्कारो को एक तरह से खारिज कर दिया। औद्योगीकरण ने अर्थ केन्द्रित विचारधारा पर आधारित प्रतिस्पर्धा को जन्म दिया जिससे जीवन मे असतोष एव कुण्ठा ने जन्म लिया। आपसी सम्बन्धो मे प्रेम और त्याग जैसी भावना का लोप हो गया, तथा उसका स्थान स्वार्थ एव व्यक्तिवादित ने ले लिया। इस स्थिति पर विचार करते हुए 'प्रभा सक्सेना' ने लिखा है —"यह अर्थकेन्द्रित विचारधारा का ही परिणाम है, कि मानव आज परिस्थिति का नियता, स्थिति व

वस्तु से ऊँचा कोई स्वरुप न रहकर, पदार्थ से सचालित इकाई के रूप मे बदलता जा रहा है। ये परिस्थितियॉ बडी विकट है। प्रेम करूणा, सह अस्तित्व, स्वतत्रता, समानता जैसे मूल्यो का हनन हो रहा है और तब तक होता रहेगा जब तक हम अपने वैचारिक जगत को उन मूल्यो से मुक्त नहीं कर लेते जिनसे मानव सामर्थ्य का हनन होता है।" 15

औद्योगीकरण एव महानगरीकरण ने व्यक्ति की मौलिक सोच को बदल डाला। ग्रामीण सभ्यता मे पुराने मूल्य एव आदर्श किसी न किसी रूप मे कायम रहते थे, लेकिन जब ग्रामीण जनता शहरो की तरफ पलायन करने लगी तो, उसकी सोच भी उसी तरह परिवर्तित हो गयी। भौतिक प्रगति की आपा–धापी मे सास्कृतिक मूल्यो के प्रति विकर्षण उत्पन्न हुआ और पुरातन मानदड काफी पीछे छूट गये–"प्रारम्भ मे पूजीवादी व्यवस्था विकास और व्यक्तिगत स्वतत्रता की पक्षधर थी, उसका शिकजा भी उतना मजबूत नहीं था किन्तु धीरे–धीरे मशीनो की फौलादी जडता ने आदमी के भीतर प्रवेश पा लिया, ईश्वर की जगह मशीनो ने और प्रेम की जगह पैसे ने ले ली।" 16

(III) अस्तित्ववादी चिन्तन का प्रभाव

आधुनिक काल मे मानवीय अस्तित्व को महत्व प्रदान करने वाली, विभिन्न दार्शनिक प्रणालियो मे अस्तित्ववाद का महत्वपूर्ण

स्थान है। अस्तित्व का कोषागत अर्थ है —'जीवित रहने की वह पद्धति जो अन्य वस्तुओ के साथ समायोजन मे निहित है [17] अस्तित्व दर्शन के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए 'जैस्पर्स ने लिखा है—"अस्तित्व का दर्शन वह चिन्तन पद्धति है जो समस्त भौतिक ज्ञान का उपयोग करती है और उसका अतिक्रमण करती है ताकि मनुष्य पुन आत्म स्वरूप को प्राप्त कर सके।' [18]

'अस्तित्व' शब्द दर्शन के रूप मे प्रथम विश्वयुद्ध के बाद ग्रहण किया गया। इसकी शुरुआत 'हेडेगर' और कीर्कगार्ड' से हुई किन्तु इस दर्शन के प्रमुख विचारक 'सार्त्र और 'कामू थे। सार्त्र ने गम्भीर दर्शन को त्याग कर मनुष्य के अस्तित्व पर जोर दिया। वे सृष्टि की अपेक्षा मनुष्य के लिए अधिक चिन्तित है। 'सार्त्र' के अनुसार—व्यक्ति सयोगवश जन्म लेता है, कमजोरियो के कारण जीता है, और आकस्मिक रूप से मृत्यु को प्राप्त होता है। वह सघर्ष को ही अन्तिम सत्य मानता है, क्योकि सघर्ष ही व्यक्ति के अस्तित्व को प्रत्यक्ष रूप से सिद्ध करता है। वह समाज की अपेक्षा व्यक्ति को अधिक मूल्यवान मानता है, क्योकि व्यक्ति होते हुए भी नहीं है, और समाज न होते हुए भी है, और सदा रहेगा। [19]

अस्तित्व दर्शन के अनुसार मूल्य निर्धारण की स्वतत्रता हर व्यक्ति को है। मनुष्य स्वतत्र है, अत वह जब चाहे मूल्यो को परिवर्तित कर सकता है। ऐसा कोई मापदण्ड नहीं है, जो चयन को गलत या सही सिद्ध कर सके। यह धारणा गलत है, कि मानवीय

चयन को समाज या मनुष्य समर्थन प्रदान करे तभी वह उचित है। मानव जीवन को हम एक व्यवस्था या पद्धति मे नही बाध सकते। उसे क्या होना चाहिए पहले से निर्धारित न होने के कारण वह स्वय इसका निर्माण करता है।

इस प्रकार व्यक्ति के अस्तित्व को नकारने वाली हर व्यवस्था मूल्य व मान्यता अस्तित्ववादियो के निशाने पर रही। उन्होने समष्टि बोध के स्थान पर व्यक्तिबोध को प्रतिस्थापित किया। हिन्दी कहानी साहित्य भी अस्तित्ववाद से प्रभावित हुए बिना नही रह सका। डा नगेन्द्र ने लिखा है —"इस विचारधारा का आयात भारत मे भी गत दस पन्द्रह वर्षों से हो रहा है और अपने देश की बिगडती हुई राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियो ने इसके प्रचार मे योगदान किया है।'[20] ध्यातव्य है कि वह टिप्पणी उन्होने 1968 मे धर्मयुग मे की थी। नयी कहानी और उसके बाद हुए विभिन्न आन्दोलनो की कहानियो मे अस्तित्ववाद ने अपनी काफी गहरी छाप छोडी है।

(IV) फ्रायडवादी चिन्तन का प्रभाव

मनोविज्ञान के क्षेत्र मे एक मौलिक विचारक और मनोविश्लेषण के आविष्कारक के रूप मे सिग्मण्ड फ्रायड का नाम उल्लेखनीय है। फ्रायड ने अवचेतन मस्तिष्क, कामेच्छा व ग्रन्थियो के आधार पर मनोवैज्ञानिक पद्धति का विकास किया। फ्रायड की यह मान्यता है

कि—"प्रत्येक व्यक्ति के सचेतन मन के भीतर कही गहरे एक अचेतन मन होता है जिसमे व्यक्ति के भाव अनैतिक, अधार्मिक तथा असामाजिक इच्छाए और व्यवहार आते है जिन्हे व्यक्ति का सचेतन मन ऊपर आने से रोक देता है।"[21] फ्रायड के अनुसार— 'मानव मस्तिष्क तथा उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को सचालित करने वाली शक्ति लिबिडो' है। यह शक्तिशाली है किन्तु इसकी अभिव्यक्ति पर चेतना हमेशा नियत्रण रखती है। इस क्षेत्र मे नर—नारी के लैगिक आकर्षण ही नहीं बल्कि वात्सल्य स्नेह व सहानुभूति आदि भाव भी आ जाते है। मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन इसी कामेच्छा की तृप्ति मे लगा रहता है, जिसे फ्रायड ने 'रजन सिद्धान्त'[22] का नाम दिया है।

फ्रायड ने कामेच्छाओ के दमन को अनुचित और अनिष्टकर ठहराते हुए उन्मुक्त भोग और आचरण स्वातत्रय को सर्वथा नैतिक स्वीकार किया। भारतीय परिप्रेक्ष्य मे इसका परिणाम ये हुआ कि हमारे सास्कृतिक मूल्यो की उपेक्षा होने लगी। वैदिक चिन्तन प्रणाली जिसमे काम को सन्तोनोत्पत्ति और वशवृद्धि के लिए ही जरूरी समझा गया था, विखर गयी। स्त्री—पुरुष के काम सम्बन्धो मे व्यक्तिगत सुख और उन्मुक्त यौनाचार की प्रधानता हो गयी। हिन्दी कहानी मे व्यक्ति स्वातत्रय की आड मे स्वच्छन्द यौनाचार को मूल विषय वस्तु के रूप मे स्थापित कर दिया गया, जिस पर निरन्तर कहानियाँ लिखी जा रही है।

(V) मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव

मनोविश्लेषण सिद्धान्त ने जहाँ मनुष्य के मन और विचारधारा को प्रभावित किया वही दूसरी ओर मार्क्सवादी ने उसके मानसिक एव भौतिक जीवन के लिए नवीन मानदण्ड प्रस्तुत किए। कार्ल मार्क्स और उसके सहयोगी फ्रेडरिक एगिल्स ने जिस नवीन दृष्टि का विकास किया उसे 'मार्क्सवाद' नाम से अभिहित किया गया। औद्योगीकरण के फलस्वरुप उत्पन्न वर्ग व्यवस्था पर मार्क्स ने अपनी पुस्तक "दास कैपिटल' मे करारा प्रहार किया। वर्ग भेद को समाप्त करने की दिशा मे मार्क्स ने वर्ग–सघर्ष पर बल दिया। भौतिक जीवन के स्वस्थ उपभोग को अपना लक्ष्य बनाते हुए साम्य–सिद्धान्त पर आधारित एक शोषण–विहीन समाज की परिकल्पना प्रस्तुत करके, मार्क्सवाद ने वर्ग चेतना का सचार किया। शोषित वर्ग को अपने अधिकारो के लिए सगठित होकर क्रान्ति के लिए मार्क्स ने प्रेरित किया —"भौतिक जगत को छोडकर परलोक चिन्तन की ओर उन्मुख करने वाले और भाग्यवाद का प्रचार करके शोषित वर्ग की विद्रोह–भावना को शमित करने वाले धर्माडम्बर का विरोध किया। दलित वर्ग की हीन भावना को दूर करके उनमे आत्म–विश्वास का सचार किया, विजय मे विश्वास और जीवन के प्रति आस्था को उत्पन्न किया। जनवाद और मानवतावाद का समर्थन करते हुए, व्यक्ति हित की अपेक्षा समाज हित की महत्ता का प्रतिपादन किया।"[23]

'मार्क्स' ने अर्थव्यवस्था को सामाजिक सम्बन्धो और जीवन का आधार माना। समाज की समस्त परम्पराओ, भावनाओ और नैतिक मान्यताओ को अर्थाश्रित घोषित किया। मार्क्सवाद की स्पष्ट मान्यता है कि कला, विज्ञान धर्म और सस्कृति ये सभी आर्थिक ढॉचे पर ही अवलम्बित है। धर्म और ईश्वर मनुष्य के लिए, न तो लाभकारी है, न ही आवश्यक। मनुष्य अपनी समस्याओ के समाधान के लिए जब तक स्वय प्रयास नही करेगा तब तब उसे भौतिक समस्याओ से निजात नहीं मिल सकती।

भारतीय साहित्य और चिन्तन पर मार्क्सवाद का प्रभाव काफी गहरा और दीर्घकालिक रहा है। हिन्दी कहानी ही नहीं अपितु कविता मे भी मार्क्सवाद से प्रभावित कवियो की एक लम्बी और अविच्छिन्न परम्परा परिलक्षित होती है, जिन्होने मार्क्स के 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद' से प्रभावित होकर प्रचुर परिमाण मे साहित्य रचना की। भ्रष्ट पूजीवादी व्यवस्था का विरोध करते हुए उन्होने निम्न वर्ग के उत्थान के लिए समाजवादी विचारधारा का समर्थन किया।

(क) सन्दर्भित कहानियों में बदलते जीवन मूल्यो का प्रभाव

दो महायुद्धो की विभीषिका देखने वाली बीसवीं सदी मे सामाजिक एव सास्कृतिक स्तर पर काफी परिवर्तन आया। "बदलते हुए सामाजिक सम्बन्धो के फलस्वरूप जब विराट जनता मे

नये–जीवन मान और जीवनादर्शों को स्थापित करने की उद्विग्नता होती है और जब उन्ही के प्रतिनिधि–स्वरुप मानवतावादी दार्शनिक कलाकार या अन्वेषक समाज के उपेक्षित या नये तत्वो की ओर ध्यान देते है और मानव समाज की आवश्यकताओ को समझते है तो नये मूल्यो की सृष्टि होती है।" 24 स्वतत्रता के पूर्व ही भारतीय मूल्यो मे दरार आनी प्रारम्भ हो गयी थी। देश मे जहॉ स्वामी दयानन्द विवेकानन्द, राजाराम मोहन राय और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जैसे मनीषी इस परिवर्तन के वाहक बने, वही विश्वपटल पर औद्योगिक क्रान्ति–मार्क्स, फ्रायड और सार्त्र जैसे दार्शनिको और अर्थशास्त्रियो ने परम्परागत मूल्यो के विरोध मे, विभिन्न आन्दोलन एव विचारधाराओ को जन्म दिया। पश्चात्य विचारो के प्रवाह मे परम्परागत भारतीय मूल्य अपनी अर्थवत्ता खोते गये। परम्परा बनाम आधुनिकता की लडाई मे परम्परा को भूतकाल की वस्तु घोषित कर दिया गया, और उसे आधुनिकता के लम्बरदारो ने अपना सबसे बडा शत्रु माना। जबकि देखा जाय तो आधुनिक मूल्यो और परम्परागत मूल्यो मे कोई मौलिक विरोध नहीं है। प्रत्येक परम्परा कभी न कभी आधुनिकता रही होती है, किन्तु कालान्तर मे यही आधुनिकता परम्परा बन जाती है–"डा विद्यानिवास मिश्रा ने परम्परा को परिभाषित करते हुए लिखा है —"परम्परा का अर्थ है – पर के भी जो परे हो श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठतर हो, जो कभी न भूत हो न भविष्यत, जो सतत् वर्तमान हो, जो कभी सिद्ध न हो, निरन्तर साध्य हो। परम्परा

इसीलिए साधना का पर्याय है। आचार का अनुशासन वह इसलिए करती है, कि एकाग्र होकर, सत्यनिष्ठ होकर विचार के प्रवाह के साधे रहे, विचार को कभी जड न होने दे – सीधी रेखा मे नहीं वर्तुल गोलाइयो मे उत्तरोत्तर ऊर्ध्वगामी होती रहे————परम्परा उषा की तरह पुराणी युवती है। हर सूर्योदय मे वह नयी होती है हर दोपहरी मे प्रखर होती है, हर सन्ध्या मे ध्यानमग्न होती है हर चॉदनी मे स्वप्नाविष्ट होती है। वह बिना मरे नया जन्म लेती है।"[25] इस परिभाषा से स्पष्ट है कि पुराने एव नवीन जीवन मूल्यो मे विरोध न होकर अर्न्तसम्बन्ध है, क्योकि कोई भी जीवन मूल्य आत्यतिक नही होता। आधुनिकतापूर्ण दृष्टि प्रत्येक मूल्य को वर्तमान के सामाजिक सन्दर्भो और परिवेश मे ग्रहण करती है। इसीलिए परम्परा से चले आ रहे प्रेम, विवाह नैतिकता, न्याय भक्ति, ईश्वर आदि से सम्बन्धित सभी मूल्य आधुनिक युग मे सशोधित और पुनसृजित हुए है।"

बदलते जीवन मूल्यो ने व्यक्ति की स्वतत्रता एव समानता पर काफी जोर दिया। व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा ने जीवन मे व्यक्ति के सार्वभौम और सर्वप्रभुता सम्पन्न महत्व को स्थापित किया। पारिवारिक सम्बन्धो मे परिवर्तन आया, और आत्मिक सम्बन्धो का आधार अर्थ हो गया। वैयक्तिक स्वतत्रता का परिणाम यह हुआ कि व्यक्ति 'परहित' के स्थान पर 'स्वहित' मे केन्द्रित हो गया। नवीन नैतिक मूल्यो ने प्रेम एव यौन सम्बन्धी प्राचीन मान्यताओ को काफी हद तक न कर

दिया और विवाह जैसे सस्कार मात्र मजाक बनकर रह गये। बदलते जीवन मूल्यो का स्पष्ट प्रभाव हिन्दी की दाम्पत्य सम्बन्धी कहानियो पर दिखाई पडता है, जिन्हे आगे रेखाकित किया गया है।

(I) नैतिक मूल्यों पर प्रभाव

मानव जीवन के कर्त्तव्य एव आचरण को निर्धारित कने मे नैतिक मूल्यो का प्रमुख योगदान है। किसी भी देश या जाति के उत्थान–पतन मे नैतिक आचरण एव नियम निर्णायक भूमिका निभाते हे। इनके अन्तर्गत प्रेम, सेक्स, मानवीय करूणा, ईमानदारी, परोपकार आदि भाव आते है। नैतिक मूल्य आदर्श व्यवहार के नियामक होते है। मनुष्य अपनी इच्छाओ, वासनाओ और विचारो की पुष्टि को उचित माने या उसके दमन को, इन्हीं आधारो पर प्रत्येक देश और युग की नैतिकता का नियमन होता है। 'नैतिकता का कोई भी शाश्वत नियम अथवा मूल्य नही है, जो समय और अवसर के अनुकूल तोडा या छोडा न जा सके।"[26] जब नैतिकता जबर्दस्ती लादी जाती है, तो व्यक्ति उसके प्रति विद्रोह करता है। प्रत्येक देश और समाज का इतिहास इसका साक्षी है। पाश्चात्य चिन्तन प्रणाली का नैतिक मूल्यो पर काफी विध्वशक प्रभाव पडा। कार्ल मार्क्स सार्त्र, कामू, फ्रायड आदि के विचारो मे ईश्वरीय सत्ता के तिरस्कार ने मनुष्य को स्वच्छन्द व्यवहार के लिए प्रेरित किया। पाप–पुण्य, नैतिक–अनैतिक, स्वर्ग–नरक की कल्पना जो मनुष्य को नैतिक

आचरण के लिए प्रेरित करते थे, का सर्वथा लोप हो गया। यौन शुचिता और शारीरिक पवित्रता को नकारने का परिणाम यह हुआ कि मनुष्य अपनी इच्छाओ और वासनाओ की पूर्ति के लिए किसी भी हद तक जाने को तत्पर हो गया। जिस काम को भारतीय मनीषियो ने धर्म, अर्थ और मोक्ष के साथ 'पुरुषार्थ चतुष्ट्य' के रूप मे प्रतिष्ठित किया था, उसे फ्रायड ने एक जैविक और शारीरिक आवश्यकता मात्र कहकर उसके उन्मुक्त भोग को प्रेरित किया। यद्यपि यह कोई नवीन परिकल्पना न होकर भारत मे बहुत प्राचीन काल से विद्यमान रही है। वात्स्यायन ने कामसूत्र मे शरीर की इस आवश्यकता की ओर खुले शब्दो मे जनमानस का ध्यान आकृष्ट किया है—"प्राचीन काल मे ही वात्स्यायन ने अपने कामसूत्र मे अन्य बातो के अतिरिक्त यह बात भी स्पष्ट शब्दो मे कही थी, कि शरीर के अस्तित्व के लिए कामतुष्टि भी उतना ही आवश्यक है जितना कि भोजन। [27] सेक्स सम्बन्धी नैतिकता के स्खलन का परिणाम यह हुआ कि वर्तमान समाज मे अवैध सम्बन्धो की बाढ सी आ गयी।

वर्तमान कहानी मे सेक्स सम्बन्धी स्वच्छन्दता स्त्री पुरुष दोनो मे देखी जा सकती है। यह दाम्पत्य सम्बन्धो के भीतर और बाहर दोनो रुपो मे उपलब्ध है। कामतुष्टि एक अलग माग है और 'पति–पत्नी' का सम्बन्ध बिल्कुल दूसरी बात है। जब पुरुष अपनी काम तुष्टि के लिए पर नारी के पास पहुँच सकता है तो नारी

अपनी भावनाओ को क्यो दबाती रहे। इन्ही भावनाओ को बल देते हुए आधुनिक कहानीकारो ने दाम्पत्य सम्बन्धो के बाहर के प्रेम सम्बन्ध को साहस के साथ चित्रित किया है। ऊँचाई (मन्नू भण्डारी) देह की सीता (दीप्ति खडेलवाल) तुक (मृदुला गर्ग) दूसरे का विस्तर त्रिकोण (कृष्ण बलदेव वैद), तलाश (मणिका मोहिनी) आदि कहानियो मे स्वच्छन्द यौनाचार का खुला चित्रण मिलता है। जहॉ 'ऊँचाई' की नायिका अपनी अतृप्त काम भावना को तृप्त करने के लिए अपने पूर्व प्रेमी को अपना शरीर समर्पित करती है, किन्तु फिर भी अपने मे किसी प्रकार का पापबोध अनुभव नहीं करती। वह अपने को पतिव्रत धर्म से च्युत नही मानती। वह झूठी क्षमायाचना द्वारा अपनी देने के बजाय यही बेहतर मानती है कि— 'यदि वैवाहिक सम्बन्धो का आधार इतना छिछला है, इतना कमजोर है कि एक हल्के से झटके को भी सभाल नहीं सकता तो सचमुच उसे टूट जाना चाहिए।'' 28

पुरुषो को मिलने वाली स्वतत्रता के समानान्तर, आज की महिलाए भी बराबरी का अधिकार पाना चाहती है। नारियो मे यह विचार दृढ हो गया है, कि प्यार और विवाह मे अन्तर होता है। इसीलिए वह जीवन को भरपूर जी लेना चाहती है। 'दीप्ति खडेलवाल' की कहानी 'देह की सीता' मे 'डॉ शालिनी' एक ही पुरुष से शारीरिक सम्बन्ध रखना मूर्खता समझती है। नारी देह का पूरी तरह भोगने मे ही वह जीवन की सार्थकता मानती है। युगधर्म

ऐसा है कि इस प्रकार के विचार आज की नारी मे ही नही बल्कि आज के पुरुष की भी ऐसी ही भावनाए है। तभी तो आज के पति–पत्नी ऐसे विचारो को समान रूप से स्वीकार कर, अपना जीवन सुखपूर्वक व्यतीत करते है—"शालिनी और रजीत ने कभी स्पष्ट नहीं कहा, परन्तु उनमे एक अनकहा–सा समझौता है। वे दोनो सेक्स को शरीर की माग मानते है, और प्यार को मन की। दोनो ही माग एक स्रोत से तृप्त हो, ऐसा आवश्यक तो नही।"[29] इस भावना को दोनो पति–पत्नी मान कर चलते है।

कभी–कभी सिर्फ तात्कालिक सुख प्राप्त करने के लिए ही स्त्री–पुरुष एक दूसरे से सम्बन्ध बना लेते है। इसके लिए न तो शारीरिक अतृप्ति कारण होती है न ही पारिवारिक तनाव। मात्र सुख प्राप्त करने की लिए यौन सम्बन्ध बनाने की कहानी है 'त्रिकोण'। 'कृष्ण बलदेव वैद' की इस कहानी मे पुरुष अपने मित्र की पत्नी के साथ सभोग करता है। अपने प्रगाढ क्षणो मे पुरुष सोचता है कि "वह कोई भी औरत हो सकती थी और मै कोई भी मर्द। हम कहीं भी हो सकते थे। उस समय कोई भी आ सकता था, कुछ भी हो सकता था। हमारे जिश्म बागी हो चुके थे। [30]

जिश्म की यही बगावत मृदुला गर्ग की कहानी तुक और मणिका मोहिनी की 'तलाश' मे भी देखी जा सकती है। 'तुक' की नायिका के लिए पति का होना एक प्रकार का सुरक्षा कवच है। वह अपने जीवन की एक रसता तोडने के लिए पर–पुरुषो से

सम्भोग करने मे असीम सुख पाती है। इसी तरह तलाश की नायिका 'रितु' भी किसी एक के साथ सम्बन्ध बनाने के बजाय अनेक लोगो से सम्बन्ध स्थापित करना चाहती है ताकि भिन्न–भिन्न प्रकार से किये जाने वाले यौन सुख का आनन्द प्राप्त कर सके।

स्वातत्र्योत्तर कहानी मे प्रेम और नैतिकता के आपसी सम्बन्धो की नयी दृष्टि सामने आती है। इतिहास के अनुसार नैतिक बोध मे जो बदलाव आया है वह प्रेम के बदले हुए स्वरुप उसकी प्रक्रिया और प्रेम सम्बन्धी धारणाओ का परिणाम है। नैतिक मूल्य अपने स्वभाव से रूढ होते है और मानव के मन मे उनका विश्वास भी उसे रूढिवादी बनाने वाला होता है। इसके अतिरिक्त 'भौतिकबोध सामाजिक बोध होता है, लेकिन प्रेम एक वैयक्तिक बोध है इसलिए नैतिक मूल्यो के सामने प्रेम अपनी वैयक्तिक स्थिति के कारण विरोध मे खडा होता है।" 31

(II) सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यो पर प्रभाव

मनुष्य जाति के सभ्य बनने की प्रक्रिया मे सास्कृतिक मूल्यो का काफी योगदान रहा है। समाज की परिकल्पना को पुष्ट आधार देने के लिए प्राचीन मनीषियो ने एक सुसगत आचरण सहिता का निर्माण किया। कोई भी जाति या समाज अपने सस्कृति, कला और धर्म से, अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए जिन उच्चतर उपादानो को ग्रहण करता है, कालान्तर मे वहीं सास्कृतिक एव सामाजिक

मूल्यो के रुप मे स्थापित हो जाते है। परिस्थितियो मे बदलाव आने से परम्परागत सामाजिक मूल्यो एव विचारधारा मे बदलाव आ जाता है। वर्तमान भारतीय समाज को यदि हम प्राचीन भारतीय समाज के परिप्रेक्ष्य मे देखे तो उसमे काफी परिवर्तन दिखाई देता है। पाश्चात्य सभ्यता एव सस्कृति ने हमारे जन–जीवन, रहन–सहन विचारधरा एव रुचियो को बहुत ही गहराई से प्रभावित किया। नयी जीवनस्थितियो मे मनुष्य की रुचियो एव आत्मीय सम्बन्ध भी परिवर्तित हो जाते है। सम्बन्धो की यह बदलती स्थिति नये जीवन मूल्यो की सृष्टि मे सहायता करती है।

बदलते जीवन मूल्यो का सर्वाधिक प्रभाव सामाजिक सरचना और परम्परागत मूल्यो पर पडा। अब तक जहॉ स्त्री की भूमिका चौके चूल्हे तक सीमित होती थी, वहीं अब वह पुरुष के समानान्तर चलने लगी। उसकी इस स्थिति के लिए समय–समय पर होने वाले नारीमुक्ति आन्दोलनो तथा पाश्चात्य शिक्षा ने काफी निर्णायक भूमिका का निर्वाह किया। नौकरी पेशा नारी जब आर्थिक रूप से आत्म–निर्भर हुई तो पुरातन सामाजिक ढॉचे मे उसकी महत्वाकाक्षाए पूरी तरह अट नहीं पायीं। स्त्री पति से स्वामी के बजाय साथी की तरह व्यवहार करने की अपेक्षा रखने लगी। फलस्वरूप उनके वैवाहिक सम्बन्धो मे तनाव और टूट के सकेत साफ दिखाई देने लगे। राजेन्द्र यादव की 'टूटना' 'छोटे–छोटे ताजमहल' राजी सेठ 'अधे मोड से आगे', मेहरुन्निसा परवेज की

एक मौलिक सस्था रही है। जीवन जीने की विषमतर स्थितियो और अर्थप्रधान दृष्टि के कारण सयुक्त परिवार बडी तेजी से विघटित हुए है। उषा प्रियबदा की कहानी 'वापसी पारिवारिक विश्रृखलता को लेकर लिखी गयी, ऐसी ही एक कहानी है जहॉ कथा नायक 'गजाधर बाबू' वर्षो की लम्बी नौकरी के बाद वापस आकर अपनो के बीच मे भी बेगाने से होकर रह जाते है। बच्चो और बहू के साथ जब पत्नी से भी उन्हे समुचित आदर और सम्मान नही मिला, तो वे पुन दूसरी नौकरी पर जाने के लिए विवश हो जाते है। 'मोह भग की यह तीक्ष्ण अनुभूति एक विस्तृत व्यापक परिवेश मे मानवीय सकट को उजागर करती है। यह मानवीय सकट केवल गजाधर बाबू के सामने हो ऐसी बात नही है क्योकि यह समस्या सयुक्त परिवार के टूटने की है जो पूरे समाज के सामने है।' [33] आर्थिक सकट और घर जोडने के प्रयास मे आदमी का अकेले होते जाना एक निर्मम सच्चाई है। इस स्तर पर व्यक्तिगत दर्द की कहानी होते हुए भी यह सामाकि दर्द की कहानी है।

बदलते हुए सामाजिक एव सास्कृतिक परिवेश मे भी आधुनिक दौर मे कुछ ऐसी कहानियॉ लिखी गयीं जिनमे नवीन मूल्यो के प्रति आग्रह का भाव होते हुए भी, पुरातन मूल्यो और मान्यताओ के प्रति उपेक्षा का भाव नहीं है। कृष्णा सोबती की 'एक दिन' और निर्मला अग्रवाल की 'सिमटती जिन्दगी' की नायिकाए उपेक्षा और अत्याचार का दश झेलकर भी परम्पराओ के प्रति विद्रोह का भाव

नही ला पाती। 'एक दिन' की नायिका शीला अपने पति द्वारा सपत्नी ले आने का विरोध नही कर पाती और पति द्वारा उपेक्षिता होकर भी उसी घर मे पडी रहती है। सपत्नी की अनुपस्थिति मे पति द्वारा एक दिन के लिए अपना अधिकार और प्यार पाकर निहाल हो जाती है—'वह रात कितनी गीली थी, कितनी गहरी थी। गरजते हुए बादलो का निनाद सुनकर भी बिजली चमकती जा रही थी। एक महीन–सी रेखा किस गति से कजराई बादलो को उन्मत्त किये जा रही थी। और पति की गोद मे पडी कल तक की बेवश और दुर्बल शीला आज रोकर भी हॅसती जा रही थी। 34
इसी तरह 'सिमटती जिन्दगी' की नायिका मन्नो पति द्वारा उजड्ढ और गॅवार कहकर त्याग दिये जाने के बावजूद उसके दुर्घटना ग्रस्त हो जाने पर अपने माता–पिता और सास–ससुर के याचनापूर्ण आग्रह को नही ठुकरा पाती —भाग्य ने एक बार फिर खामोश हो गये जल मे ककड फेक कर असख्या लहरे उठा दी थीं। भीतर चल रहे अधड मे सूखे पत्ते–सी उड रही थी मै क्या करूँ ये सब अपनी अपनी सोचते है अपने मान–अपमान को देखूँ या विपदा के बोझ से झुकी चारो ओर से मुझे देखती इन बूढी ऑखो को ।" 35

उपरोक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुॅचते है, कि वर्तमान समाज मूल्य सक्रमण की स्थिति से गुजर रहा है। वर्तमान समय मे जिस तरह से मूल्य टूट जाते है, या बदल रहे है उनके

पीछे कोई वैज्ञानिक कारण एव परिस्थिति तथा आवश्यकता न होकर व्यक्ति की वैयक्तिक भावना है —'व्यक्तिवाद के मूल मे अहम् की भावना काम कर रही है। परम्परागत भारतीय चिन्तन मे लोकोत्तर भाव के निर्मित आत्मा एव चेतना के उन्नयन के लिए 'अहम् की उपासना की गयी। किन्तु पाश्चात्य चिन्तन के फलस्वरूप अहम् का प्रयोग भी नये सन्दर्भों मे होने लगा है, और यह निर्विवाद सत्य है कि सन्दर्भो के साथ अर्थ बदल जाते है। आज अह की मूल प्रवृत्ति समाज सस्कृति एव ईश्वर के प्रति विद्रोह करना है। अत वर्तमान जगत मे हर ओर पुरातन के प्रति विद्रोह की भावना प्रकट हो रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो परम्परा से पृथक होकर ही व्यक्ति स्वतत्रता का अनुभव कर रहा है।"[36]

पाद-टिप्पणी

1 सस्कृत हिन्दी कोश – वामन शिवराम आप्टे – पृष्ठ 812

2 आर के मुखर्जी – द सोशल स्ट्रक्चर आफ वैल्यूज पृ 21

3 इन्टरनेशनल इन्साइक्लोपीडिया ऑफ द सोशल साइन्सेज भाग – 16 पृ 223

4 क्लाइडे क्लुखोन, आइविड, पृ 35

5 डा रमेश कुन्तल मेघ, सौन्दर्य–मूल्य और मूल्याकन पृ 5

6 रेशमी रामदोनी – "समकालीन हिन्दी लेखिकाओ की कहानियो मे अभिव्यक्त बहुआयामी विद्रोह, प 116

7 रामधारी सिह दिनकर – "आधुनिक बोध' पृष्ठ 48

8 अज्ञेय–हिन्दी साहित्य, एक आधुनिक परिदृश्य पृ 3

9 एच एम जानसन – सोसियोलॉजी ए सिस्टमैटिक इन्ट्रोडक्सन पेज, 49

10 टूटते जीवन मूल्य और लेखिका की भूमिका – प्रभा सक्सेना, मधुमती, मई 1986 पृ 28

11 हिन्दी कहानी दो दशक की यात्रा स रामदरश मिश्र, नरेन्द्र मोहन, पृ 120

12 रेशमी रामदोनी – समकालीन हिन्दी लेखिकाओ की कहानियो मे अभिव्यक्त बहुआयामी विद्रोह पृ 116

13 हिन्दी कथा साहित्य – समकालीन सन्दर्भ डा ज्ञान अस्थाना पृष्ठ 44

14 विज्ञान और मानव मूल्य – शुकदेव प्रसाद, आजकल, नवम्बर, 82 पृ 28

15 प्रभा सक्सेना – टूटते जीवन मूल्य और लेखक की भूमिका मध ुमती, मई 1986, पृ 32

16 डा गोविन्द रजनीश – साहित्य का सामाजिक यथार्थ पृ 7

17 एच जे ब्लैजम, सिक्स एक्जिस्टेसलिस्ट थिंकर्स, पृ 47

18 डा महावीर सिह – ज्यॉ पाल सार्त्र और अस्तित्व दर्शन की अवधारणा मधुमती, जनवरी, 81, पृ 17

19 डॉ नगेन्द्र – आज का लेखन और सास्कृतिक विघटन, धर्मयुग,

जून 1968 पृ 17।

20 मोनिका हारित – समकालीन हिन्दी कहानी मे चित्रित मूल्यगत चेतना, पृ 59

21 प्लेजर प्रिसिपल।

22 जनेश्वर वर्मा – हिन्दी काव्य मे मार्क्सवादी चेतना पृ 504

23 डा रमेश कुन्तल मेघ, सौन्दर्य मूल्य और मूल्याकन पृ 34

24 डा विद्या निवास मिश्र, परम्परा बन्धन नही पृ 12

25 डा पुष्पपाल सिह – समकालीन कहानी युगबोध का सन्दर्भ पृ 14

26 डा रमेश कुन्तल मेघ – सौन्दर्य मूल्य और मूल्याकन, पृ 57

27 प्रमिला कपूर – विवाह सेक्स तथा प्रेम, पृ 277

28 मन्नू भण्डारी – ऊँचाई (एक प्लेट सैलाब), पृ 137

29 दीप्ति खडेलवाल – देह की सीता, कडवे सच।

30 वैध की सम्पूर्ण कहानियॉ मेरा दुश्मन, त्रिकोण पृ 325।

31 डा शिवानन्द नौटियाल – हिन्दी महिला कहानीकारो की कहानियो मे दाम्पत्य, सम्मेलन पत्रिका भाग 81 स 4।

32 मेहरुन्निशा परवेज, अन्तिम चढाई, अयोध्या से वापसी पृ 31

33 कान्ता अरोडा – हिन्दी कहानी का मूल्याकन, पृ 85।

34 कृष्णा सोबती – एक दिन (बादलो के घेरे) पृष्ठ 159

35 डा निर्मला अग्रवाल, अस्तित्व की तलाश, स पृथ्वीनाथ पाण्डेय, पृ 43

36 दीपा मार्टिन, नयी कहानी मे जीवन मूल्य, पृ 136

उपसंहार

उपसंहार

भारतीय वैदिक परम्परा मे स्त्री और पुरुष को सृष्टि का मूल माना गया है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इस मानव–जगत के निर्माण की प्रसव बेला मे आत्मा ने सृष्टि–सचालन हेतु अपने को दो भागो मे विभक्त करके आधे से पति और आधे से पत्नी रुप का निर्माण किया–

"स इममेवात्मान द्वेधा पातयन्त पतिश्च पत्नी चाभवताम्।

तस्मादिदमर्धबृगलमिव स्व इतिह स्माह याज्ञवल्क्य ।।

–वृहदारयण्क उपनिषद् १/४/३

भारतीय तत्व साधको ने कालान्तर मे वशवृद्धि हेतु 'स्त्री–पुरुष के सम्मिलन को अनिवार्य मानते हुए, उनके आपसी काम–सम्बन्ध को शास्त्र–सम्मत बनाने के लिए विवाह' नामक सस्कार का विधान किया। पति–पत्नी के इस पवित्र सम्बन्ध को 'दाम्पत्य' सम्बन्ध नाम दिया गया जो शताब्दियो बीत जाने के बावजूद अपने अन्तर मे स्त्री–पुरुष के काम सम्बन्धो का उच्चादर्श सॅजाये हुए है। धर्म प्राण भारत मे पुरुष और स्त्री को समानता का अधिकार देते हुए ईश्वर के अर्द्धनारीश्वर रूप की कल्पना सृष्टि के

प्रारम्भ मे ही कर ली गयी थी जो किसी भी देश या समाज मे इस उच्चतम भाव भूमि पर प्रतिष्ठित परिलक्षित नही होती।

यदि हम 'दाम्पत्य सम्बन्ध की दृष्टि से प्राचीन वैदिक वाड्मय का अनुशीलन करे तो यह तथ्य निर्विवाद रुप से सामने आता है कि दाम्पत्य सम्बन्धो मे जैसा सामजस्य और सहयोग उस काल मे दिखाई देता है वैसा भविष्य मे किसी भी युग मे फिर दृष्टिगोचर नहीं होता। सामाजिक अनुशासन और नैतिक प्रतिमान उस युग के दाम्पत्य सम्बन्धो की आधार शिला रहे है। वैदिक ऋचाओ की रचना करने अतिरिक्त पत्नी–पति के साथ यज्ञादि पुनीत कार्यो मे भी भाग लेने की अधिकारिणी थी। उस समय लडकियो का भी यज्ञोपवीत सस्कार होता था तथा विवाह सोलह वर्ष की उम्र के बाद ही होता था। स्त्री को भी पुरुष के समान शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था। कुल मिलाकर वैदिक काल मे दाम्पत्य का आदर्श रूप समाज मे प्रतिष्ठापित हो चुका था।

रामायण काल मे भी दाम्पत्य सम्बन्धो की यह उच्चतर स्थिति पूरी तरह विद्यमान रही। पत्नी पति के साथ यज्ञ मे भाग लेने के अतिरिक्त युद्ध और शिकार पर भी जा सकती थी। कोई भी धार्मिक प्रयोजन अथवा यज्ञ पत्नी की अनुपस्थिति मे पूर्ण नहीं होता था। कैकेयी का चक्रवर्ती सम्राट दशरथ के साथ देवासुर सग्राम मे भाग लेना तथा अश्वमेध यज्ञ के समय सीता की अनुपस्थिति मे उनकी स्वर्ण मूर्ति की स्थापना इस परम्परा के सुन्दर उदाहरण है। लेकिन

इन समस्त उपलब्धियो के बावजूद परवर्ती युगो मे दाम्पत्य सम्बन्धो मे जो विसगतियॉ आयी – उनके बीज रामायण काल से ही दिखाई पडने लगते है। बहुपत्नी विवाह तथा लोकापवाद के भय से पत्नी का परित्याग सर्वप्रथम रामायण काल मे ही दृष्टिगोचर होता है।

महाभारत काल मे दाम्पत्य सम्बन्धो की जटिलताए तथा विसगतियॉ उभरकर सतह पर आ गयी। माता के रुप मे स्त्री समादृत थी लेकिन पत्नी के रूप मे उसके अधिकारो मे काफी कटौती कर दी गयी। अब वह पूरी तरह पति की अनुगामिनी हो गयी और उसके स्वतत्र व्यक्तित्व का प्राय लोप हो गया। उसे स्वतत्र रूप से धार्मिक कार्य अथवा यज्ञादि करने से विधि सम्मत ढग से रोक दिया गया–

'नास्ति स्त्रीणा पृथग्यज्ञो न व्रत नाप्युपोषितम्।

पतिशुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते।।

राजाओ मे बहुपत्नी प्रथा तो महाभारत काल के पूर्व ही प्रचलित थी, लेकिन बहुभर्तृता का समाज सम्मत उदाहरण पहली बार महाभारत मे ही दिखाई देता है। पाचाल नरेश द्रुपद की पुत्री द्रोपदी का विवाह युधिष्ठिर आदि पाच भाइयो के साथ हुआ था। द्यूतक्रीडा के समय युधिष्ठिर अपने राज्य वैभव के साथ साथ अपनी धर्मपत्नी द्रोपदी को भी दॉव पर लगाकर हार गये थे। इन उदाहरणो के आलोक मे यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है

कि स्त्री अपनी प्रतिष्ठा और स्वतत्र सत्ता खोती जा रही थी।

स्त्री–पुरुष सम्बन्धो की सबसे भयावह स्थिति मध्यकाल मे दृष्टिगोचर होती है। जो नारी माता और पत्नी के रूप मे परिवार और समाज के निर्माण मे सहभागिनी एव बराबर की हिस्सेदार रही थी, उसे इस काल मे व्यक्ति के बजाय वस्तु के रूप मे प्रतिष्ठित कर दिया गया। लगभग हजार वर्षों का मध्यकालीन इतिहास उसकी इंसी भूमिका के इर्दगिर्द घूमता है। पुरुष केन्द्रि समाज ने उसे भोग और वासना के पूर्ति का साधन माना और उसके मन मे यह धारणा बैठा दी गयी कि वह मात्र पुरुष की इच्छापूर्ति के लिए ही बनी है। इस स्थिति मे परिवर्तन उन्नीसवीं शताब्दी मे होने वाले नारी जागरण और नारी मुक्ति आन्दोलनो के परिणामस्वरुप ही हो पाया।

भारतीय नव जागरण और नारी जागरण मे घनिष्ट अन्तर्सम्बन्ध रहा। समाज मे सती प्रथा, बाल विवाह, विधवा पुनर्विवाह आदि के परिप्रेक्ष्य मे समाज सुधारको की एक पूरी पीढी ने आन्दोलन का रूख अख्तियार कर लिया। राजा राम मोहन राय दयानन्द सरस्वती, विवेकानन्द तथा ईश्वर चन्द्र विद्यासागर आदि के भगीरथ प्रयासो के बाद नारी की स्थिति मे काफी सुधार आया। यूरोप मे नारी मुक्ति आन्दोलन की जनक 'वेटटी फ्राइडन ने अपनी पुस्तक 'द फेमिनिनमिस्टिक' मे अपने व्यापक अध्ययन द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि पुरुष प्रधान समाज ने मनोवैज्ञानिक

दबाव डालकर स्त्री को पुरुष के हाथो का खिलौना बनने को विवश किया है। नारी मुक्ति आन्दोलन को प्रभावित करने वाली दो और प्रमुख पुस्तके थी – केट मिलेट की 'सेक्सुअल पालिटिक्स' और सीमोन द वोउवार की 'सेकेन्ड सेक्स'। इन दोनो पुस्तको ने विचार धारा के स्तर पर नारीवादी सोच मे युगान्तकारी परिवर्तन किया। देश से बाहर होने वाले इन आन्दोलनो के प्रभाव से भारतीय साहित्य और समाज भी अछूता न रह सका। समानता और स्वतत्रता प्राप्त करने की छटपटाहट भारतीय स्त्रियो मे भी वेचैनी की हद तक बढी हुई दिखाई देने लगी जिसका प्रस्फुटन आधुनिक कहानी साहित्य मे पूरे बेग से हुआ है।

अपने विकास के शैशव काल मे हिन्दी कहानी का मूल रूप 'कथात्मक रहा। प्रेमचन्द्र के आगमन के बाद कहानी अपने सामाजिक सन्दर्भो से जुडने के लिए व्यग्र' सी नजर आती है। प्रेमचन्द्र मनुष्य की सद्वत्तियो मे गहरी आस्था रखने वाले लेखक है, इसलिए उनकी कहानियो का रचना ससार छल, छद्म से मुक्त भोले निष्चल और आस्थावान लोगो का ससार है। उनकी दाम्पत्य सम्बन्धी कहानियॉ भी उनके इस आस्था का अतिक्रमण नही कर पाती। 'सौत' ''मर्यादा की वेदी'' आदि कहानियो की नारियो के लिए पति एव उनका प्रेम ही सर्वस्व है, उसकी मर्यादा और सम्मान की रक्षा के लिए वे प्राण तक देने के लिए तत्पर नजर आती है। प्रेमचन्द्र की कुछ कहानियो यथाकुसुम, मिस पद्मा, नैराश्य लीला

आदि मे पुरुष समाज के अत्याचार और शोषण के विरुद्ध आवाज उठाई गयी है।

प्रेमचन्द के परवर्ती कहानीकारो ने दाम्पत्य सम्बन्धी कहानियो की रचना करते समय स्त्री–पुरुष के समानता के सिद्धान्त पर बल दिया। जैनेन्द्र, यशपाल अज्ञेय इलाचन्द्र जोशी आदि ने इस भाव भूमि पर जो भी कहानियॉ लिखीं, उसमे मनोविश्लेषण और मनोविज्ञान का सहारा लिया गया। उनकी मूल दृष्टि व्यक्ति स्वातत्रय और स्त्री–पुरुष के आपसी अन्तर्द्वन्द्व को गहराई मे जाकर रेखाकित करने की रही है। प्रेमचन्द्रोत्तर कहानी का यह परिदृश्य स्वाधीनता के बाद के कुछ वर्षो तक बना रहा। लेकिन कहानीकारो की एक ऐसी पीढी भी इस समय हिन्दी कहानी के द्वार पर दस्तक देने लगी थी, जिनके मन मे सद्य प्राप्त आजादी के प्रति गहरी वितृष्णा तथा असन्तोष की भावना थी।

जिस समय देश के 'भाग्य विधाता' सविधान निर्माण मे जुटे हुए थे, उस समय भारतीय जन मानस चुनौतियो के दौर से गुजर रहा था। पाश्चात्य विचारको – डार्विन फ्रायड सार्त्र आदि के आदर्शवाद विरोधी विचारो का दबाव औसत भारतीय मन पर ही नहीं, बल्कि कहानीकारो की रचना–प्रक्रिया और सोच पर भी दिखाई देने लगा। जीवन की वास्तविकताओ और यथार्थ के अकन को 'नयी कहानी' के उन्नायको ने कहानी का प्रतिपाद्य निर्धारित किया। राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, और कमलेश्वर की त्रयी ने फ्रायडीय

मनोविज्ञान और सार्त्र के अस्तित्ववाद को पाशेय के रूप मे ग्रहण करते हुए पति–पत्नी के आपसी सम्बन्धो पर अनेक उल्लेखनीय कहानियॉ लिखी। टूटना, छोटे–छोटे ताजमहल एक और जिन्दगी आदि कहानियो मे पति–पत्नी के आपसी सम्बन्धो और व्यवहार मे आए परिवर्तन को काफी करीब से देखा जा सकता है।

नयी कहानी के बाद हिन्दी कहानी मे विभिन्न प्रकार के आन्दोलनो और नामो की एक परम्परा सी चल पडी। सचेतन कहानी अकहानी समान्तर कहानी जनवादी कहानी आदि नामो के पीछे कोई न कोई तर्क या कारण दिया गया। विभिन्न धाराओ एव खाचो मे बटे होने के बावजूद हिन्दी कहानी की सोच और सवेदना मे कोई मौलिक अन्तर नही है। लगभग सभी कहानीकारो ने दाम्पत्य सम्बन्धो मे आए तनाव, टूट व टकराव पर अच्छी कहानियो की रचना किया है। मन्नू भण्डारी उषा प्रियम्बदा, रवीन्द्र कालिया दूधनाथ सिह, मेहरून्निशा परवेज, कृष्ण बलदेव वैद, दीप्ति खडेलवाल, निर्मला अग्रवाल, दिनेश पालीवाल और मणिका मोहिनी आदि ने पति–पत्नी के टूटते सम्बन्धो और आपसी तनाव को भिन्न–भिन्न रुपो मे रेखाकित किया है। 'ऊँचाई', अयोध्या से वापसी "नौ साल छोटी पत्नी", 'सन्धिपत्र', 'देह की सीता', 'त्रिकोण' 'रीछ' आदि कहानियों में 'फ्रीलिविंग' 'फ्री सेक्स' की प्रतिबद्धता साकार हुई है। यहाँ मुख्य जोर व्यक्ति स्वातत्र्य और मानवीय सवेदना को पूरी ईमानदारी से व्यक्त कररने पर रहा है। कहानीकार व्यवस्था पर पूरी

निर्ममता से प्रहार करते है बिना इसकी चिन्ता किये कि सामने वाले पर क्या गुजरेगी ?

स्वातत्र्योत्तर कहानी मे पारिवारिक एव सामाजिक मूल्यो मे ही परिवर्तन नही हुआ बल्कि कहानी के परम्परागत ढॉचे मे भी काफी तोड फोड की गयी। आधुनिक कहानी ने कहानी के परम्परागत रूप फार्मूलाबद्ध लेखन को अस्वीकार कर अपना नया शिल्प विकसित किया। हडसन के आधार पर निर्मित विश्वविद्यालीय समीक्षा मे मान्य कथा के छ तत्वो और उनकी आन्तरिक सघटना को आधुनिक कहानी के रूपबध मे खोजना एक निरर्थक प्रयास है। आज कथ्य और शिल्प की एकरुपता के लिए लेखक की अनुभूति को पुष्ट आधार न मानकर प्रयोग की विभिन्नता तथा विशिष्टता को अनिवार्य माना जाने लगा है।

आधुनिक कहानीकारो ने कथानक की परम्परागत धारणा को तोडकर बौद्धिक धरातल से कथानक का चुनाव किया जिसके फलस्वरुप कथा सन्दर्भो मे अधिक सूक्ष्म और गहन बौद्धिकता की प्रवृत्ति दिखाई देती है। नयी कहानी का सारा जोर कथानक पर न होकर कथ्य पर है। कथानक की व्याप्ति की प्रचलित रूढि छोडकर उसमे एक भाव एक अनुभूति एक सकेत की प्रतिष्ठा ही पर्याप्त समझी जाने लगी है। अज्ञेय की 'रोज' योगेश गुप्त की 'चितकोबरा', रमेश चन्द्र शाह की 'अभगढ' आदि कहानियो मे कथानक एक से बिल्कूल नहीं है, पात्रों के मन की सोच ही विस्तार पाती

जाती कहानी का रूप धारण कर लेती है। कहानी के प्रति इस बदली दृष्टि के कारण कहानी मे घटना व पात्रो का महत्व नहीं रह गया अपितु स्थितियो व पात्रो की अत सघर्ष की स्थिति पर कहानी को केन्द्रित कर उसका विन्यास किया गया। इस सम्बन्ध मे श्रीकान्त वर्मा का चिन्तन द्रष्टव्य है– अगर कहानी का ढॉचा बार–बार इतनी तेजी के साथ टूट–टूटकर बदल रहा है तो इसका कारण यही है कि कलाकार का अनुभव कलाकार से बडा होता है। कलाकार का कोई ईश्वर नही होता। कलाकार का ईश्वर उसका अनुभव होता है, जिसे प्रतिष्ठित करने के लिए वह उसके अनुरूप मन्दिर की रचना करता है।''

कहानी के शीर्षक या नामकरण मे भी प्रयोगात्मक प्रवृत्ति पायी जाती है। कहीं इन नामो मे प्रतीकात्मकता है तो कही मिथकीय पात्रो को प्रतीकात्मक रूप मे अपनाने का आग्रह है। 'मछलियॉ 'परिन्दे, 'पुराने नाले पर नया फ्लैट', 'फ्राक वाला घोडा निकरवाला सईस' आदि नाम कथ्य से सम्बन्धित है। इसी तरह 'अभिमन्यू की आत्महत्या', 'सावित्री न २'' एक और शतुकतला 'देह की सीता', 'अयोध्या से वापसी' आदि नामो मे पौराणिक पात्रो या स्थानो को नामकरण का आधार बनाया गया है। एनाम जहॉ इस बात का एहसास कराते हैं कि कहानी का कथ्य कल्पना से हटकर जिन्दगी की सच्चाई का एक अश है, वहॉ शीर्षक को भी एक आकर्षण प्रदान करते हैं। 'कहीं–कहीं' नामकरण मे नवीनता लाने के

आग्रह मे बडे विस्मयकारी नाम भी रखे गये है। जैसे नहीं यह कोई कहानी नही' 'ये भी कोई गीत है ईमानदार कहानी रास्ता इधर से है आदि।

आधुनिक कहानी मे प्रतीकात्मक योजना एव बिम्ब विधान की उपयोगिता को नये सिरे से अनुभव किया गया है। प्रतीको के सामान्य प्रयोग से अलग हटकर आधुनिक कहानी जीवन और अनुभूतियो मे से अपने प्रतीक चुनती है। यद्यपि इन प्रतीको के प्रयोग के कारण कुछ कहानियॉ इतनी गूढ हो गयी है कि उनको समझना दुष्कर हो गया है जैसे दूधनाथ सिह की कहानी कोरस। हिन्दी कहानीकारो मे मोहन राकेश, निर्मल वर्मा राजेन्द्र यादव रमेश वक्षी, मुद्राराक्षस आदि ने अपनी कहानियो मे सार्थक प्रतीको का प्रयोग किया है। स्वप्न प्रतीक के रुप मे मन्नू भडारी ने 'तीन निगाहो की एक तस्वीर' तथा सुदीप ने कितना पानी जैसे कहानियो लिखकर इस शैली को पर्याप्त बढावा दिया।

कहानी के शिल्प क्षेत्र मे जो प्रयोग हुए है उसमे फतासी या 'परिकल्पनात्मक कथा' सबसे महत्वपूर्ण है। यह जीवन यथार्थ की कटुताओ का तीखा एहसास कराने वाला एक अचूक व्यग्यात्मक साधन है। कथ्य को सीधे न कह पाने की मजबूरी होने पर भी भाषा फतासी–शिल्प मे रूपान्तरित हो जाती है। फतासी अपने मारक प्रभाव मे सोद्‌देश्य होती है। नयी कहानी के दौर मे राजेन्द्र यादव तथा कमलेश्वर ने इस शिल्प का प्रयोग विशेषत किया। यादव की

सिहवाहिनी तथा 'अध शिल्पी' और ऑखो वाली राजकुमारी मे फतासी शिल्प का प्रयोग लोककथा शैली मे हुआ है। कमलेश्वर ने अपने देश के लोग मे देश की भ्रष्ट व्यवस्था मे दम तोडते जन सामान्य की जिन्दगी की विषम स्थितियो को उघाडा है। परवर्ती कथा–दौर मे दूधनाथ सिह (कोरस) गगा प्रसाद विमल (प्रेत) मुक्तिबोध (ब्रह्मराक्षस का शिष्य) दिनेश पालीवाल (गीली ऑखो वाली तस्वीर) आदि ने फतासी शिल्प मे अच्छी कहानियॉ लिखी है। इस शिल्प का सर्वाधिक सार्थक प्रयोग आपात काल के दौरान देखने को मिला। दाम्पत्य सम्बन्धो को आधार बनाकर इस शिल्प मे प्रचुर परिमाण मे कहानियॉ नही लिखी गई। दूधनाथ सिह बहुचर्चित कहानी रीछ' इस शिल्प का सुन्दर उदाहरण है।

आधुनिक कहानीकारो ने भाषा की एकरसता और जडता को तोडने की दिशा मे भी सार्थक प्रयास किये। भाषा द्वारा अनुभूतियो को सही रुप मे अभिव्यक्त कर पाने की अक्षमता को कई कहानीकारो ने अनुभव किया तथा भाषा पर पडे हुए पुरातन मुखौटे को उतार फेका। इस प्रक्रिया मे भाषा कहीं कहीं नगी कटु तथा अश्लील भी हो गयी है। व्याकरण के नियमो के अवहेलना के साथ ही यहॉ वाक्य गठन मे भी भिन्नता है। जैसे–

(क) "उसकी पीठ पर चर्बी की मोटी–मोटी तहे थी जिसमे ब्रा की तनियॉ धॅसी हुई थीं। पेटीकोट मे उसके भारी नितम्ब थलथला रहे थे। उसकी इच्छा हुई कि वसूले से उसकी पीठ बाहे

और नितम्ब छील दे जिससे उसका छछहापन वापस लौट आए।
— दिनचर्या — दूधनाथ सिह

(ख) 'मै उसकी बॉहो मे कस ली गयी थी। ऑखे बन्द करके मैने अपने आप को उस स्थिति मे देखे जाने की कल्पना की थी और डर से मेरा शरीर उत्तेजित हो उठा था। निरावरण किया जाना मुझे अच्छा लगा था। मेरी ऑखे बन्द थी और मेरे मुँह से आवाजे निकल रही थीं।" त्रिकोण — कृष्ण बलदेव वैद।

परम्परा पर पडी हुई नैतिकता और शालीनता की चर्बी उतार फेकने की प्रक्रिया मे यहॉ भाषा नायिका' की तरह 'निरावरण हो गयी है। डा॰ देवी शकर अवस्थी ने ठीक ही लिखा है— चौथे पॉचवे दशको के लेखक यथार्थ का सृजन करते थे, तो पचास के लेखक यथार्थ को अभिव्यक्त करते थे पर एक दम नया समकालीन कहानीकार 'यथार्थ को खोजता है। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि आधुनिक कहानी मे भाषा की सर्जनात्मक शक्ति काफी समृद्ध हुई। भाषा ने आपको पुरातन सस्कारो और कथाशैलियो से अलग करके अपने लिए एक अलग ढॉचा निर्मित किया है जो खुरदुरा होने के बावजूद बोधगम्य है।

परिशिष्ट

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1 बलदेव उपाध्याय — सस्कृत साहित्य का इतिहास

2 कल्याण नारी अक — 22 वर्ष विशेषाक — सपादक हनुमान प्रसाद पोद्दार

3 वाचस्पति गैरोला — वैदिक साहित्य एव सस्कृति
प्रथम सस्करण — 1969, प्रकाशन — सवर्तिका प्रकाशन इलाहाबाद

4 वाल्मिकि रामायण — गीता प्रेस गोरखपुर

5 महाभारत आदिपर्व — गीताप्रेस गोरखपुर

6 अल्तेकर — आइडियल एण्ड पोजीशन ऑफ हिन्दू वीमेन इन सोशल लाइफ ग्रेट वीमेन ऑफ इण्डिया मे सकलित कलकत्ता 1953

7 कैलाश नाथ शर्मा — भारतीय समाज सस्कृति तथा सस्थाए कानपुर 1852

8 आशारानी व्होरा — नारी शोषण आइने और आयाम
द्वितीय सस्करण — 1994, नेशनल पब्लिशिग हाऊस, दिल्ली

9 अनिल गोयल — हिन्दी कहानी मे नारी की सामाजिक भूमिका
प्रथम सस्करण — 1985, प्रकाशक — आर्यान पब्लिशिग हाऊस, दिल्ली

10 वीर भारत तलवार — राष्ट्रीय नवजागरण और साहित्य
प्रथम सस्करण 1993, प्रकाशन — हिमालय पुस्तक भडार, गाधीनगर

11 लक्ष्मी नारायण लाल – हिन्दी कहानियो की शिल्प विधि का विकास
चतुर्थ सस्करण 1974, प्रकाशन – साहित्य भवन प्रा लि

12 वेद प्रकाश अमिताभ – हिन्दी कहानी के सौ वर्ष
प्रथम सस्करण – 1988 प्रकाशन – मधुबन प्रकाशन, मथुरा

13 मधुरेश – हिन्दी कहानी का विकास
द्वितीय सस्करण – 2000, प्रकाशक – सुमित प्रकाशन इलाहाबाद

14 कान्ता (अरोडा) मेहदीरत्ता – हिन्दी कहानी का मूल्याकन
प्रथम सस्करण 1984, प्रकाशन – राधाकृष्ण प्रकाशन

15 बच्चन सिह – आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास – लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद

16 परमानद श्रीवास्तव – हिन्दी कहानी की रचना प्रक्रिया
सस्करण 1965, प्रकाशक – ग्रथम प्रकाशन, कानपुर

17 डा रमेश चन्द्र लावनियॉ – हिन्दी कहानी मे जीवन मूल्य

18 मधुरेश – नयी कहानी पुनर्विचार
प्रथम सस्करण – 1999, प्रकाशक – नेशनल पब्लिशिग हाऊस, दिल्ली

19 कहानी नयी कहानी – नामवर सिह
द्वितीय सस्करण – 1973, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद

20 समकालीन कहानी – युगबोध का सदर्भ – डॉ पुष्पपाल सिह
प्रथम सस्करण – 1986, नेशनल पब्लिशिग हाऊस, दिल्ली

21 डॉ मोनिका हारित – समकालीन हिन्दी कहानी मे समाज सरचना
प्रथम संस्करण – 2001, श्याम प्रकाशन, जयपुर

22 रेशमी रामदोनी – समकालीन हिन्दी लेखिकाओ की कहानियो मे अभिव्यक्त बहुआयामी विद्रोह

प्रथम सस्करण – 2001 स्वराज प्रकाशन दिल्ली

23 साधना अग्रवाल – वर्तमान हिन्दी महिला कथालेखन और दाम्पत्य जीवन,

प्रथम सस्करण – 1995 वाणी प्रकाशन, दिल्ली

24 सीमोन बोवूआर – स्त्री उपेक्षिता

25 कमलेश्वर – नयी कहानी की भूमिका

द्वितीय सस्करण – 1969, अक्षर प्रकाशन, प्रा लि दिल्ली

26 डा रोहिणी अग्रवाल – हिन्दी उपन्यास मे कामकाजी महिला

प्रथम सस्करण – 1992, दिनमान प्रकाशन दिल्ली

27 राजेन्द्र यादव – कहानी स्वरूप और सवेदना

तृतीय सस्करण – 1988, नेशनल पब्लिशिग हाऊस, दिल्ली

28 डा एम एल मेहता – स्वातत्रयोत्तर हिन्दी कहानी वस्तु विकास एव शिल्प विधान

प्रथम सस्करण – 1984, प्रगति प्रकाशन आगरा

29 डा हेतु भारद्वाज – स्वातत्रयोत्तर हिन्दी कहानी मे मानव प्रतिमा

प्रथम सस्करण – 1983, पचशील प्रकाशन, जयपुर

30 डा ऊषा चौहान – नयी कहानी के कहानीकारो की आलोचनात्मक दृष्टि

प्रथम सस्करण – 1990, हिमाचल पुस्तक भडार

31 वेद प्रकाश अमिताभ – हिन्दी कहानी एक अर्न्तयात्रा

गिरनार प्रकाशन गुजरात

32 डा ज्ञान अस्थाना – हिन्दी कथा साहित्य समकालीन सन्दर्भ

प्रथम सस्करण – 1981, जवाहर पुस्तकालय मथुरा

33 किशोर गिरडकर – मन्नू भडारी कथा साहित्य

प्रथम सस्करण – 1985 विश्व भारती प्रकाशन

34 डा बलराज पाण्डेय – कहानी आन्दोलन की भूमिका

35 डा सुरेश धीगडा – हिन्दी कहानी दो दशक

प्रथम सस्करण – 1978, अभिनव प्रकाशन, दिल्ली

36 रामदरश मिश्र – हिन्दी कहानी अतरग पहचान

प्रथम सस्करण – 1966, नेशनल पब्लिशिग हाऊस

37 शशि भूषण शीताशु – नयी कहानी के विविध प्रयोग

प्रथम सस्करण – 1974, लोक भारती प्रकाशन

38 आचार्य बलदेव उपाध्याय – वैदिक साहित्य और सस्कृति

39 डा लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय – द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास।

40 डा सुरेश सिन्हा – हिन्दी कहानी का उद्भव एव विकास

41 डा लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय – आधुनिक कहानी का परिपार्श्व

प्रथम सस्करण – 1966, साहित्य भवन प्रा लि इलाहाबाद

42 डॉ राधेश्याम गुप्त – प्रेमचन्दोत्तर कहानी साहित्य

प्रथम सस्करण – 1970, विमल प्रकाशन जयपुर

42 डा विवेकी राय – हिन्दी कहानी समीक्षा और सन्दर्भ

प्रथम सस्करण – 1985 राजीव प्रकाशन इलाहाबाद

43 डा देवी शकर अवस्थी – नयी कहानी सदर्भ और प्रकृति
प्रथम सस्करण – 1966, अक्षर प्रकाशन प्रा लि दिल्ली

44 गगा प्रसाद विमल – आधुनिक हिन्दी कहानी
प्रथम सस्करण – 1978, एस जी पासानी द्वारा दि मैकमिलन कपनी ऑफ इण्डिया लि के लिए प्रकाशित, तथा भारत सरकार मुद्रणालय मे मुद्रित

45 वामन शिवरामन आप्टे – सस्कृत हिन्दी कोश

46 डा रमेश कुन्तल मेघ–सौन्दर्य मूल्य और मूल्याकन

47 अज्ञेय – हिन्दी साहित्य, एक आधुनिक परिदृश्य

48 रामधारी सिह दिनकर – आधुनिक बोध

49 आर के मुखर्जी – द सोशल स्ट्रक्चर ऑफ वैल्यूज

कहानीकार और कहानी सग्रह

1 पिजडे की उडान, ज्ञानदान – यशपाल

2 मानसरोवर – भाग 2 – प्रेमचन्द

3 मोहन राकेश की सम्पूर्ण कहानिया – अनीता राकेश
प्रकाशन – राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली

4 क्वाटर तथा अन्य कहानिया – मोहन राकेश
प्रथम सस्करण – 1972, प्रकाशक – राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली

5 मेरी प्रिय कहानियॉ – राजेन्द्र यादव

प्रथम सस्करण – 1971, प्रकाशक – राजपाल एण्ड सन्स

7 कितना बडा झूठ – ऊषा प्रियबदा

8 जिन्दगी और गुलाब के फूल – ऊषा प्रियबदा

प्रथम सस्करण – 1961 भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

9 मैं हार गयी – मन्नू भडारी

प्रथम सस्करण – 1957 अक्षर प्रकाशन, प्रा लि

10 एक प्लेट सैलाब – मन्नू भडारी

प्रथम सस्करण 1968, अक्षर प्रकाशन प्रा लि

11 त्रिशकु – मन्नू भडारी

प्रथम सस्करण – 1978, अक्षर प्रकाशन प्रा लि

12 सपाट चेहरे वाला आदमी – दूधनाथ सिह

प्रथम सस्करण – 1967, अक्षर प्रकाशन, प्रा लि दिल्ली

13 पहला कदम – दूधनाथ सिह

प्रथम सस्करण – 1976, रचना प्रकाशन

14 सोने का ब्रेसर – मेहरून्निसा परवेज

प्रथम सस्करण – 1991 सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली

15 अन्तिम लडाई – मेहरून्निसा परवेज

राजकमल प्रकाशन, प्रा लि, दिल्ली

16 आदम और हव्वा – मेहरून्निसा परवेज

प्रथम सस्करण – 1972, नेशनल पब्लिशिग हाऊस, दिल्ली

17 पेपरवेट – गिरिराज किशोर

18 नौ साल छोटी पत्नी – रवीन्द्र कालिया

प्रथम सस्करण – 1969, अभिव्यक्ति प्रकाशन

19 तीसरी हथेली – राजी सेठ

प्रथम सस्करण 1981 – राजकमल प्रकाशन दिल्ली

20 अधे मोड से आगे – राजी सेठ

द्वितीय सस्करण – 1983 राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

21 दूसरे देशकाल मे – राजी सेठ

प्रथम सस्करण – 1992, नेशनल पब्लिशिग, नयी दिल्ली

22 दुनिया का कायदा – मृदुला गर्ग

प्रथम सस्करण – 1983, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली

23 डेफोडिल जल रहे है – मृदुला गर्ग

प्रथम सस्करण – 1978, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली

24 यह तीसरा – दीप्ति खडेलवाल

28 कडवे सच – दीप्ति खडेलवाल

राजपाल एण्ड सस

26 दूसरे किनारे से – कृष्ण बलदेव वैद

प्रथम सस्करण – 1970, राधाकृष्ण प्रकाशन

27 वैद की सम्पूर्ण कहानिया – 1 मेरा दुश्मन – कृष्ण बलदेव वैद

प्रथम सस्करण – 1999, नेशनल पब्लिशिग हाऊस

28 एक अमूर्त तकलीफ – रमेश वक्षी

प्रथम सस्करण – 1972, नीलाभ प्रकाशन

29 मेरी प्रिय कहानिया – रमेश वक्षी

प्रथम सस्करण – 1975, राजपाल एण्ड सस, दिल्ली

30 टूटना कहानियाँ – राजेन्द्र यादव

प्रथम सस्करण – 1966, अक्षर प्रकाशन

31 दुश्मन – दिनेश पालीवाल

प्रथम सस्करण – 1973 नया साहित्य प्रकाशन

32 बादलो के घेरे – कृष्णा सोबती

प्रथम सस्करण – 1980, राजकमल प्रकाशन दिल्ली

33 अनुत्तरित – शशि प्रभा शास्त्री

प्रथम सस्करण – 1975, राजकमल प्रकाशन दिल्ली

34 अस्तित्व की तलाश – सपादक पृथ्वी नाथ पाण्डेय

प्रथम सस्करण – 1991 उमेश प्रकाशन, इलाहाबाद

35 अपने कितने अपने – निर्मला अग्रवाल

प्रथम सस्करण – 1986, तरूण प्रकाशन, इलाहाबाद

36 अभी तलाश जारी है – मणिका मोहिनी, ज्ञान भारतीय प्रकाशन, दिल्ली

37 समय और हम – जैनेन्द्र

सस्करण – 1962, पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली

38 मेरी प्रिय कहानियाँ – इलाचन्द्र जोशी

पत्रिकाएँ-

1 हस

2 वागर्थ

3 आजकल

4 सरस्वती

5 सम्मेलन पत्रिका

6 सारिका

7 साप्ताहिक हिन्दुस्तान

8 मधुमती

9 सचेतना